

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU 180888

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82

Accession No.

Author

V31H
वर्मा, वृन्दावनलाल .

Title

हंसमयूर . 1955 .

This book should be returned on or before the day

हंस-मयूर

(ऐतिहासिक नाटक)

वृन्दावनलाल वर्मा,

(लेखक—मृगनयनी, भासी की गनी लक्ष्मीबाई, अचल मंरा कोई,
कचनार, सुमादिवजू, लगन, विगटा की पद्मिनी, सोना, सङ्गम,
प्रेम की भेंट, माभव जी मिथिया, गढ़कुण्डार, अमरबेल,
दूटे काटे, पूर्व की ओर, राखी की लाज आदि)

मयूर प्रकाशन

भांसी • दिल्ली

प्रकाशक—

सत्यदेव वर्मा बी. ए. एल-एल. बी.,
मयूर-प्रकाशन भाँसी ।

पंचम संस्करण १९५५

अनुवाद इत्यादि के सम्पूर्ण अधिकार प्रकाशक के अधीन हैं ।
चित्रपट-निर्माण के अधिकार लेखक के अधीन ।

मूल्य २।) रुपया

मुद्रक—

स्वाधीन प्रेस, झांसी ।

भूमिका

ऐतिहासिक उपन्यास अथवा नाटक लिखने में कई कठिनाइयाँ हैं जो सम्पूर्णतया काल्पनिक कथा के लिखने में नहीं होती हैं। इतिहास की बातों को बदलने का अधिकार लेखक को नहीं है। इतिहास के समय का हाँ उसे वर्णन करना होता है, उस काल के समाज और मार्वाजनिक दशा से उसकी कल्पनाशक्ति नियन्त्रित हो जाती है, उस समय के वेश और रहन-सहन का उसे ज्ञान प्राप्त करना होता है। श्री वृन्दावनलाल जी वस ने विक्रमादित्य के काल से इस नाटक 'हंस-मयूर' का सम्बन्ध रक्खा है। लेखक ने नाटक के आरम्भ में बड़ी योग्यता से उस समय का परिचय दिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस नाटक के लिखने से पूर्व कितना परिश्रम और अन्वेषण आवश्यक है। केवल ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो भी नाटक आदर का पात्र है।

भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में कहा है—

‘लोकसिद्धं भवेत् सिद्धं नाट्यलोक स्वाभावजम् ।

तस्माद्नाट्य प्रयोगे तु प्रमाणं लोक इत्यते ॥’

इसी बात को अंग्रेजी कवि Dryden ने कहा है “The drama’s laws the drama’s patrons give” प्राचीन शास्त्रकारों ने यह भी कहा है कि नाटक के ये अङ्ग हैं—

अभिनय, प्रकृति, पाठ्य, छन्द, अलङ्कार, स्वर, सङ्गीत। “हंस-मयूर” इन सबसे अलंकृत है। साहित्यिक दृष्टि से इसका चरित्र चित्रण दृढ़ और आकर्षक है। कथा रोचक है, पाठक को पढ़ने में आनन्द मिलता है।

साथ ही मेरा विश्वास है कि रङ्ग-मञ्च पर इसका अभिनय सफल होगा । अभिनय का सिद्धान्त भरत मुनि के शब्दों में यह है—

‘वयोऽनुरूपः प्रथमस्तु वेपो
वेपोऽनुरूपश्च गति प्रचारः ।
गति प्रचारानुगतं च पाठ्य
पाठ्यानुरूपोऽभिनयश्च कार्यः ।’

यदि इस नाटक का अभिनय कुशल पात्रों द्वारा हुआ तो इसके देखने वालों को एक अपूर्व भलक अतीत भारत की मिलेगी । एक और विलक्षणता इस नाटक में है जो पाठक और दर्शक हिन्दी के बहुत से और नाटकों में नहीं पायेंगे-वह है इसकी भाषा, जिसमें न तो गद्य काव्य का प्रसार किया गया है, और न कृत्रिमता आने पाई है । प्रसाद जी महाकवि थे, प्रेमचन्द जी सफल उपन्यास लेखक थे परन्तु श्री वृन्दावनलाल जी वर्मा उपन्यास और नाटक, दोनों कला में अपना, विशिष्ट स्थान रखते हैं ।

मेरी सम्मति में ऐसी उत्तम पुस्तक यदि विद्याधियों को पढ़ने को मिले, तो मनोरंजन के साथ-साथ उनको भारतीय संस्कृति से भी परिचय होगा और उनको अच्छा उपदेश मिलेगा ।

काशी विश्वविद्यालय,
२५-६-४८

}

अमरनाथ झा

परिचय

हिन्दी में विक्रमादित्य के ऊपर जो नाटक अब तक लिखे गये हैं, उनमें आधुनिकतम ऐतिहासिक अनुसन्धानों का बहुत कम उपयोग किया गया है। और चित्रपटों की तो बात ही निराज़ी है। एक बार 'विक्रमादित्य चित्रपट (फ़िल्म)' को देखकर तो मनमें बहुत ही ग्लानि हुई थी। यह चित्रपट उस समय के इतिहास और तत्कालीन अवस्था का विपर्यय मात्र था। नाटकों और कहानियों में तो कुछ है भी, चित्रपट तो अनर्गल ही था। विक्रम सम्वत् और विक्रमादित्य के सम्बन्ध का पुराना ऐतिहासिक मत चन्द्रगुप्त द्वितीय में अपना स्रोत बहुत समय तक पाता रहा। परन्तु शिलालेखों और सिक्कों से यह मत बिल्कुल निराधार प्रमाणित हुआ है। अब यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि विक्रम सम्वत् ईसा से ७५ वर्ष पूर्व ही स्थापित हुआ था और मालवगणतन्त्र की पुनः स्थापना के उपलक्ष में इसका प्रचलन किया गया था।

इस निर्धार पर पहुँचने के लिये चार शिलालेख मिले हैं। पहला सं० २०२ का है, दूसरा सं० ४२८ का, तीसरा सं० ४६१ का, और चौथा सं० ४६३ का। यही समय गुप्त सम्राटों के उद्भव और विकास का भी है। इनमें से किसी भी शिलालेख में किसी भी गुप्त सम्राट की कीर्ति या नाम का उल्लेख नहीं है। विक्रम शब्द का भी कोई उपयोग नहीं है। पहला लेख उदयपुर राज्य में नादसा में एक यूप पर है। वह इस प्रकार है:—

कृतयोर्द्वयो वर्षशतयो द्व्यशीतयोः चैत्र पूर्णामास्याम् ।

कृतके २०२ वर्ष उपरान्त की चैत्र पूर्णिमा में ।

दूसरा शिलालेख भरतपुर राज्य में प्राप्त हुआ है:—

कृतेषु चतुर्षु वर्ष शतेष्वष्टाविशेषु ।

कृतके ४२८ वै वर्ष में ।

तीसरा मन्दसोर में प्राप्तः—

श्री मालवगण आते प्रशस्ते कृत संज्ञिते ।

एष षष्ट्यधिके प्राप्ते समाप्त चतुष्टये ।

इसमें मालवगण और कृत को संयुक्त कर दिया गया है । एक प्रकार से दोनों को एक दूसरे का पर्याय या बना दिया है । 'मालवगण या कृत नाम से विख्यात ४६१ वें वर्ष में ।

चौथा शिलालेख भी मन्दसोर में मिला है। —

मालवानां गणस्थिन्या याते जत चतुष्टये ।

त्रिनवत्याधिके ऽवदानां गृह्णते सेव्य घनस्तने ।

मालवगण की स्थापना में ४६२ वें वर्ष में ।

मालवों का गणतन्त्र बहुत प्राचीन था इसका उल्लेख मेगस्थनीज (Megasthenese) ने अपने भारत वर्णन में किया है । मेगस्थनीज की पूरी पुस्तक लुप्त हो गई है, परन्तु उसको अन्य ग्रन्थानी (ग्रीक) लेखकों ने ऊद्धृत किया है । इन उद्धरणों का संकलन पटना कालेज के प्रिन्सिपल मैकक्रिन्डल ने अपनी अङ्गरेजी पुस्तक (Megasthenese Indika) में किया है । उसमें तत्कालीन भारतीय समाज का एक खामा चित्र मिलता है । इन मालवों ने सिकन्दर के दांत खट्टे किये थे । मालवों और यौधेयों के सम्मिलित निरोध के सामने सिकन्दर को झुकना और लौट जाना पड़ा था ।

सिकन्दर के चले जाने के उपरान्त मौर्यों के शासनकाल में भारत को, बहुत समय तक, शान्ति-सुख मिलता रहा । मौर्यों की सत्ता के क्षीण हो जाने के काल में शकों, हूणों इत्यादि ने उत्तर-पश्चिम से टिड्डी दल की भांति आक्रमण किये और उन्होंने भारतीय संस्कृति को झकझोर डाला । मौर्यों के उत्तराधिकारी शुङ्गों ने मध्यदेश के यवनों और उत्तर में आये

शक-हूणों का दमन करने के उपाय किये, परन्तु इन आक्रमणकारियों का प्रवाह थोड़ा ही अवरोध हो पाया। धार्मिक विवादों से उत्पन्न कलहों ने समाज को बहुत अस्त व्यस्त और निर्धन कर दिया था। अनेक भारतीय बौद्ध शक-हूणों को आक्रमण के लिये नियन्त्रण देते रहते थे। कुछ कारण भी था। एक शुङ्ग राज ने सांची के कुछ बौद्ध स्तूपों को तुड़वा दिया था। विदेशी बाढ़ों ने शैव और वैष्णव मन्दिरों को भङ्ग किया था !! शकों और हूणों के धर्म का यह हाल था कि जहां जाते वहीं के धर्म के बाहरी स्वरूप में रंग जाते, परन्तु बर्बरता उनकी अधुण रहती थी। उनके सिक्कों पर यूनानी, ईरानी, बौद्ध, शैव और वैष्णव मतों की चित्रकारी अंकित है ! एक ओर कोई यूनानी देवता दूसरी ओर कोई भारतीय !

उस समय भारत में गणतन्त्र, राजतन्त्र, राजा और एकाधिकारी नरेश तक थे। प्रधान गणतन्त्र, मालवों यौधेयों आरकों, उत्तमभद्रों इत्यादि थे। जनसत्ता-नियन्त्रित राजतन्त्र और राजा, विदिशा, कोशल, इत्यादि में और एकाधिकारी नरेश आन्ध्र, पाटलिपुत्र इत्यादि में। मण्डलेश्वरता की ओर राजनीति अनिवार्य रूप से अप्रसर हो रही थी। गणतन्त्रों में वद-विवाद इतना बढ़ जाता था कि काम निबट ही नहीं पाता था, कभी कभी वितण्डावाद इतना हो पड़ता था कि बिना कुछ किये घरे ही सभा भङ्ग हो जाती थी। यौधेयों और मालवों का मेल था, परन्तु उत्तमभद्रों से इनकी शत्रुता थी। यौधेय नाम अब जाहियावार नामक राजपूतों में रह गया है, जो बहावलपूर और बीकानेर रियासतों के आस पास रहते हैं। उत्तमभद्रों के अवशेष भदौरिया ठाकुर जान पड़ते हैं। मालवों का पर्याय 'मल्ल' अब जयपूर, जोधपूर, इत्यादि के मारवाड़ी कहलाने वाले व्यापारियों के नाम भर के साथ रह गया है।

गणतन्त्रों में धर्म सम्बन्धी कलह के अनिरिक्त तीव्र राजनैतिक मत-भेदों के कारण भी बहुत फूट रहती थी। शक इत्यादि बर्बर जातियां भारत में थोड़ी बहुत संख्या में तो ईसा से लगभग छः सौ वर्ष से आ रही

चाहा और न अपने वंश के राज्य स्थापित करने के मुग्ध-प्रयास किये । वे लोग इस सिद्धान्त को पूर्णतया मानते थे:—

‘सन्यक् प्रजापालनमात्र अधिगत राज्य प्रयोजनस्य’

पूर्ण रूप से प्रजा का पालन मात्र ही राज्य प्राप्ति का प्रयोजन हो सकता है । परन्तु पीछे तो ऐसे लोग हुये:—

सर्वेयत्र प्रणेतारः वैस पंडित मानिनः ।

सर्वे महत्वं मिच्छन्ति तद् वृन्दं ह्याशु नश्यति ।

जहां सबके सब नेता बन गये हों, सब पांडित्य का अभिमान करने वाले सबके सब महत्वाकांक्षी । वहां वे समूह का नाश कर डालते हैं ।

इस मत के भीतर शत्रु—विनाश की जो उत्प्रेरणा थी वह साधारण जन के आत्म निग्रहों को यथाम्थित न रख सका और उसने बर्बरता तथा बोभत्स को समाज में उत्पन्न कर दिया । यह बात उस समय के लिये और भी अधिक लागू है जब ईसा के लगभग सौ वर्ष पूर्व शक इत्यादि बर्बरों ने बहुत बड़ी संख्या में प्रचण्डवेग के साथ निरन्तर आक्रमण किये और इस देश पर अपनी क्रूरताओं को बरसाया । इसकी प्रतिक्रिया हुई । उस प्रतिक्रिया का परिणाम कापालिक सदृश मतों का सृजन और विकास हुआ और उसमें शकों से भी बड़कर क्रूरता ने जन्म लिया । आचार्य पुरन्दर ने ईसा से लगभग पचहत्तर वर्ष पूर्व शकों का दमन करने के लिये कापालिकों का सङ्गठन किया था । आर्य संस्कृति अपने ही जन की बर्बरता से कांप उठी । उसी काल में हम उस वेण्णव धर्म का विकास और उत्थान देखते हैं जिसके इष्टदेव विष्णु की चार भुजायें हैं, जिनकी गदेली में शंख, गदा और पद्म हैं, रूप भी अत्यन्त मनोहर । संस्कृति की रक्षा के लिये शंख और वेण्णव-दोनों मतों की धाराओं का सामन्जस्य और समन्वय हुआ । तत्कालीन वास्तु, स्थापित्व, और चित्र कलाओं में स्रष्टृता अंशतः भी नहीं है । पूर्ण पुंसत्वकला, साहित्य, आचार और राजनीति में । चित्रकार सुन्दर, सुदृढ़ और बलिष्ठ शरीर वाले पुरुष को

अपनी कूँची से उतारता था, सचेत मन और प्रबल—संकल्प । साहित्यकार अपने शब्दों में उसको मूर्त करता था और शिल्पी उसको पत्थर में पक्के थमे हुये कुशल हाथों से उभार देता था । मियों के प्रतिविम्बों का भी सृजन ऐसा ही किया गया । भाषा मधुर और गौरवमयी, कृत्रिमता कम, स्पष्ट और प्रभावपूर्ण, स्फुरणमयी । भारतीय जन में आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया । विष्णु के प्रति उसकी प्रगाढ़ भक्ति ने बाहुओं में बल की विजली दौड़ाई, विवेक को स्थिर रखवा और उसने अपने बर्बर शत्रु को पछाड़ दिया । शैव, शक्ति और वैष्णव मंजुलता का समन्वय ईसा से पूर्व ही गया था । इस समन्वय ने मालवों, यौवियों नागों इत्यादि को प्रेरणा और स्फूर्ति दी । शकों के ७५ वर्ष ईस्वी पूर्व, भयंकर उपद्रवों का सामना करने के लिये एक जनपद नायक विकसित हो चुका था । उसने मालव इत्यादि गणतन्त्रों का संगठन किया । आन्ध्रों काण्वों, और नागों का, उनके अपने अपने राजन्यों अथवा राजाओं के नेतृत्व में, सहयोग प्राप्त किया और शकों से टक्कर ली । ईसा से ५७ वर्ष पूर्व और विक्रम सम्वत् के प्रारम्भ की यही गौरवपूर्ण घटना है । 'हंस-मयूर' नाटक का यही कथानक है ।

'प्रभावक चरित' नामक एक जैन ग्रन्थ है जो तेरहवीं शताब्दि में लिखा गया था, विक्रम सम्वत् की स्थापना के लगभग बारह सौ तेरह सौ वर्ष पीछे । इस ग्रन्थ में उस समय का उज्जैनाधिपति गर्दभिल्ल बतलाया गया है । उसमें कहा गया है कि धारा नगरी के राजकुमार कालकाचार्य और राजकुमारी सरस्वती जैन धर्म प्रसार के लिये उज्जैन गये तो गर्दभिल्ल ने सरस्वती को, जो बहुत सुन्दर थी, बलपूर्वक पकड़ कर अपनी रानी बना लिया । कालकाचार्य क्रुद्ध होकर शकों की शरण में सिन्धुसौवीर और उसके सुदूर उत्तर में भी गया और शक आक्रमण-कारियों को लिवा लाया । शकों ने मालवतन्त्र को नष्ट करके उज्जैन पर अधिकार कर लिया ! गर्दभिल्ल भाग गया और उसको किसी जंगल में सिंह ने पकड़ कर खा लिया । मालव विजय पर शकों के नायक उपवदात

चाहा और न अपने वंश के राज्य स्थापित करने के मुग्ध-प्रयास किये । वे लोग इस सिद्धान्त को पूर्णतया मानते थे:—

‘मन्यक् प्रजापालनमात्र अधिगत राज्य प्रयोजनस्य’

पूर्ण रूप से प्रजा का पालन मात्र ही राज्य प्राप्ति का प्रयोजन हो सकता है । परन्तु पीछे तो ऐसे लोग हुये:—

सर्वेयत्र प्रणेतारः वेँस पंडित मानिनः ।

सर्वे महत्त्व मिच्छन्ति तद्य वृन्दं ह्याशु नश्यति ।

जहाँ सबके सब नेता बन गये हों, सब पांडित्य का अभिमान करने वाले सबके सब महत्वाकांक्षी । वहाँ वे समूह का नाश कर डालते हैं ।

इस मत के भातर शत्रु—विनाश की जो उत्प्रेरणा था वह साधारण जन के आत्म निग्रहों को यथामित न रख सकी और उसने बर्बरता तथा बीभत्स को समाज में उत्पन्न कर दिया । यह बात उस समय के लिये और भी अधिक लागू है जब ईसा के लगभग सौ वर्ष पूर्व शक इत्यादि बर्बरों ने बहुत बड़ी संख्या में प्रचण्डवेग के साथ निरन्तर आक्रमण किये और इस देश पर अपनी क्रूरताओं को बरसाया । इसकी प्रतिक्रिया हुई । उस प्रतिक्रिया का परिणाम कापालिक सदृश मतों का सृजन और विकास हुआ और उसमें शकों से भी बढ़कर कृता ने जन्म लिया । आचार्य पुरन्दर ने ईसा से लगभग पचहत्तर वर्ष पूर्व शकों का दमन करने के लिये कापालिकों का सङ्गठन किया था । आर्य संस्कृति अपने ही जन की बर्बरता से कांप उठी । उसी काल में हम उस वैष्णव धर्म का विकास और उत्थान देखते हैं जिसके इष्टदेव विष्णु की चार भुजायें हैं, जिनको गदेली में शंख, गदा और पद्म है, रूप भी अत्यन्त मनोहर । संस्कृति की रक्षा के लिये शैव और वैष्णव-दोनों मतों की धाराओं का सामन्जस्य और समन्वय हुआ । तत्कालीन वास्तु, स्थापित्व, और चित्र कलाओं में खण्डता अंशतः भी नहीं है । पूर्ण पुंसत्वकला, साहित्य, आचार और राजनीति में । चित्रकार सुन्दर, सुदृढ़ और बलिष्ठ शरीर वाले पुरुष को

अपनी कूँची से उतारता था, सचेत मन और प्रबल-संकल्प । साहित्यकार अपने शब्दों में उसको मूर्त करता था और शिल्पी उसको पत्थर में पक्के थमे हुये कुशल हाथों से उभार देता था । मियों के प्रतिविम्बों का भी सृजन ऐसा ही किया गया । भाषा मधुर और गौरवमयी, कृत्रिमता कम, स्पष्ट और प्रभावपूर्ण, स्फुरणमयी । भारतीय जन में आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया । विष्णु के प्रति उसकी प्रगाढ़ भक्ति ने बाहुओं में बल की बिजली दौड़ाई, विवेक को स्थिर रखवा और उसने अपने बर्बर शत्रु को पछाड़ दिया । शैव, शक्ति और वैष्णव मंजुलता का समन्वय ईसा से पूर्व ही गया था । इस समन्वय ने मालवों, यौधेयों नागों इत्यादि को प्रेरणा और स्फूर्ति दी । शकों के ७५ वर्ष ईस्वी पूर्व, भयंकर उपद्रवों का सामना करने के लिये एक जनपद नायक विकसित हो चुका था । उसने मालव इत्यादि गणतन्त्रों का संगठन किया । ग्रन्थों कागवों, और नागों का, उनके अपने अपने राजन्यों अथवा राजाओं के नेतृत्व में, सहयोग प्राप्त किया और शकों से टक्कर ली । ईसा से ५७ वर्ष पूर्व और विक्रम सम्वत् के प्रारम्भ की यही गौरवपूर्ण घटना है । 'हंस-मयूर' नाटक का यही कथानक है ।

'प्रभावक चरित' नामक एक जैन ग्रन्थ है जो तेरहवीं शताब्दि में लिखा गया था, विक्रम सम्वत् की स्थापना के लगभग बारह सौ तेरह सौ वर्ष पीछे । इस ग्रन्थ में उस समय का उज्जैनाधिपति गर्दभिल्ल बतलाया गया है । उसमें कहा गया है कि धारा नगरी के राजकुमार कालकाचार्य और राजकुमारी सरस्वती जैन धर्म प्रसार के लिये उज्जैन गये तो गर्दभिल्ल ने सरस्वती को, जो बहुत सुन्दर थी, बलपूर्वक पकड़ कर अपनी रानी बना लिया । कालकाचार्य क्रुद्ध होकर शकों की शरण में सिन्धुसौवीर और उसके सुदूर उत्तर में भी गया और शक आक्रमण-कारियों को लिवा लाया । शकों ने मालवतन्त्र को नष्ट करके उज्जैन पर अधिकार कर लिया ! गर्दभिल्ल भाग गया और उसको किसी जंगल में सिंह ने पकड़ कर खा लिया । मालव विजय पर शकों के नायक उपवदात

ने नासिक की गुफा में अपनी विजय को चिरस्मरणीय बनाने के लिये एक शिलालेख खुदवाया, जो इस प्रकार है:—

‘गनोस्मि वर्षा—रंतु मालयेहि...हि...रुधंउत्तमभद्रं मोचयितुं तेच मालया प्रनादेनेव अपयाता उत्तमभद्रकानं क्षत्रियानं सर्वे परिग्रहा कृता ।’

आरम्भिक शकों का जैसा खिचड़ी मेल धर्म था वैसी ही भाषा भी ! एक ही लेख में संस्कृत और प्राकृत की खिचड़ी ! उसका भावार्थ है, ‘मैं वर्षा ऋतु को समाप्ति पर उत्तमभद्रों का उद्धार करने के लिये गया, जिनको मालवों ने (किमी गढ़ में) घेर रखा था । मालव मेरी हुँकार मात्र से भाग गये.....!’

नासिक की ही एक गुफा में इसी उपवदात का दूसरा शिलालेख है जो उसने गुफा के भेंट करने के सम्बन्ध में खुदवाया था :—

‘सिधं । बसे ४२ त्रैसाख मासे राज्ञो लहरातस क्षुत्रपस नहपानस जामातारा दीनीक पुत्रेन उपवदातेन संघस चातुदिसस इमं लेणं ।’

‘लहरात क्षत्रप नहपान के दामाद, दीनीक के पुत्र उपवदात ने संघ को यह गुफा लगाई ।’

तेरह चौदह वर्ष तक उज्जैन पर शासन करते हुये शकों ने जो भयंकर अन्याचार जनपदों में किये, उससे यह धरा बिलबिला उठी । चतुरांश जनता को दास बनाकर अपने देश में भेज दिया । किसानों की भूमि छीनी, शिल्पियों का विनाश किया, कलाओं को भ्रष्ट, तथा नाना प्रकार की अवर्णनीय क्रूरतायें कीं—रक्त की लो नदियां ही बहा दीं । जैन या बौद्ध राजाओं के जहां जहां शासन थे वहां अहिंसा के प्रचार के लिये एक प्रकार की पुलिस रहती थी । यह पुलिस जनता को काफी त्रास दिया

करती थी। शकों ने बौद्ध वा जैन धर्म का आवरा ओढ़ इस-अहिंसा विभाग की ओट में अश्रुतपूर्व भयानक अत्याचार और रक्तपात किये ! जूँ या खटमल को मार डालने के अपराध में अपराधी को प्राण दण्ड की व्यवस्था उन्हीं की सूझ थी जो आगे के भारतीय राजाओं ने उनसे परम्परा और उत्तराधिकार में प्राप्त की। बेगार, छोटे छोटे से अपराधों के लिये हाथ पर कटवा देना सब शकों की देन है।

किमी महापुरुष के नेतृत्व में सङ्गठित होकर जब आर्य जनपदों ने इन शकों का विध्वंस करके संस्कृति की पुनः स्थापना की—इसी पुनः स्थापना का संदेर्भ उदयपूर वाले शिलालेख में है—‘मालवानां—गण स्थित्या.....’ तब मानो फिर से सतयुग आ गया ! बिलकुल संभव है उस महापुरुष का नाम या उपनाम कृत रहा हो जिसके नाम से विक्रम सम्बत का आरम्भ हुआ। उस महापुरुष ने, न तो, अपना कोई राज्य स्थापित किया और न कोई वंश। अपने अनेक महान पूर्वजों की भांति नाम की तनिक भी चिन्ता न करते हुये, वह भारतीय—गौरव-गगन में समा गया। यही कृत ‘हंस-मयूर’ नाटक का इन्द्रसेन है। परन्तु आर्य-विजय की घटना का उल्लेख नासिक की ही गुफा में, मानो शकों के उस दम्भ का दमन करने के लिये जो उनके शिलालेख में उत्कीर्ण है, खुदवाया—

‘‘सुविभत तिवगदेस कालस।

शक यवन पल्हव निमूदनस ॥

धमोपजितकर विनियोग करस।

कितापरोधेपि सतुजने अपाणहिंसा रुचिस ॥

खखरात वंश निरवसेस करस।

भावार्थ—‘शकों, यवनों, पल्हवों और सहारातों को ध्वस्त करके निर्वश कर दिया, परन्तु धर्म की सर्वाङ्गीन स्थापना की—और बड़े बड़े अपराधी शत्रु जनों तक को अभय और रक्षा दी ! उनके साथ क्रूर बर्ताव नहीं किया, प्रत्युत उनको हिन्दू समाज और संस्कृति में सोख लिया।’ नाटक में

वर्णित पात्र पुरन्दर, रामचन्द्र नाग, नहपान, भूमक, उपवदात सब ऐतिहासिक हैं और उसी काल से सम्बन्ध रखते हैं। सरस्वती को सुनन्दा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वकुल कल्पित है, परन्तु उस समय के भारतीय यवनों का प्रतिविम्ब है। उसी काल में या उसके लगभग एक विलक्षण नर्तकी, अभिनेत्री और गायिका का अस्तित्व मिलता है। नर्मदा कांठे की गुफाओं में उसका नाम सुतनुका लिखा है। नर्मदा के भेड़ा घाट [भृगु घाट] पर दो बड़ी मूर्तियां पड़ी हुई हैं जो जान पड़ता है किसी शक कन्या ने बनवाई हैं। मैंने सुतनुका और उभ शक कन्या का समन्वय 'हंस-मयूर' की तन्वी में किया है। शकों की या यवनों की कन्याओं के साथ आर्यों का विवाह कोई नई बात न थी। नाटक की घटना के लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य ने मैल्यूकम ग्रीक की पुत्री के साथ विवाह सम्बन्ध किया था।

'हंस-मयूर' नाटक में तत्कालीन वेशभूषा, वस्त्रों और अलङ्कारों का वर्णन किया गया है, यदि उनका विशेष विवरण जानना हो तो अन्यत्र भी मिल सकता है। कपड़ों, विशेष कर पंजामे के सम्बन्ध में सन्देह हो सकता है कि यह प्राचीन हिन्दुओं की वेशभूषा में नहीं था। मैं इस बात को नहीं मानता। अलबेरूनी जब ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में आया था, उसको भी भ्रम हुआ था। उसने अपने ग्रंथ 'किताबुल हिन्द' [अंग्रेज़ी अनुवाद के प्रथम खण्ड का पृष्ठ ६७] में लिखा है कि हिन्दू लोग मुसलमानों की तरह के कपड़े पहिनते हैं—साफ़ा बांधते हैं, ड्र मलते हैं, नाना प्रकार के रंगे कपड़ों से अपने शरीर को सजाते हैं और उनके पंजामे इतने लम्बे होते हैं कि एड़ी तक ढक जाती है! [उसी खण्ड का पृष्ठ १८१] अजन्ता की गुफाओं में जो चित्र आज भी प्राप्त हैं उन में बच्चे जांघिये पहिने हैं, और कुछ पुरुष पिंडलियों तक के आधे पंजामे और कुछ पूरे। जांघिये के लिये 'जघ' शब्द वैदिक संस्कृत में है। अलबेरूनी ने अपने उस ग्रंथ में हिन्दुओं के उन आचारों का भी वर्णन किया

हे जिनको भूमक ने इस नाटक में ३५वें पृष्ठ पर प्रकट किया है। [पृष्ठ १८१ भाग १] अजन्ता की गुफाओं के चित्र अलबेरूनी के लेख से सैकड़ों वर्ष पहले बन चुके थे पिंडलियों तक के 'टाप वृत्तों' सदृश जूते और झिलम टोप खजुराहो के सूर्य मन्दिर [चित्रगुप्त मन्दिर] की शिलाओं पर आज भी उत्कीर्ण देखे जा सकते हैं। मैंने इसका विवरण 'हंस-मयूर' में नहीं दिया है।

मैंने नाटक के अन्तिम अङ्क में चुनाव की परिपाटी का कुछ विवरण दिया है। उसका सविस्तार वर्णन डॉक्टर काशीप्रसाद जायसवाल की पुस्तक हिन्दू राज्य तन्त्र (Hindu Polity) में मिलेगा इसका अनुवाद हिन्दी में हो गया है। भारतीय सङ्गीत का विकास ईसा से तीन सौ वर्ष पहले ही पर्याप्त रूप में हो चुका था। जिन रागों का उपयोग मैंने नाटक में किया है वे हमारी संस्कृति के इतिहास से असंगत नहीं हैं।

उस प्राचीन काल के समाज के रूप को रङ्गमञ्च पर लाने के लिये अभिनय कर्त्ताओं को थोड़ी सी सावधानी के साथ उस काल के इतिहास को—विशेषकर कला के इतिहास की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये। मैंने तत्कालीन भावों और वाङ्मयों को नाटक में उतार लाने का प्रयत्न किया है, परन्तु नाटक दृश्य-साहित्य है इसलिए नाटककार को अभिनय कर्त्ताओं के कौशल का पूरा सहयोग चाहिये।

देश में ऐसे नाटकों की बड़ी आवश्यकता है। जो पढ़े जाने योग्य तो हों ही, परन्तु मञ्च के लिये भी उपयुक्त हों। उतनी ही आवश्यकता इस प्रकार के साहित्य की चित्रपट जगत के लिये भी है, जिसमें इतिहास और चरित्र-चित्रण की नब्बे प्रतिशत उपेक्षा की जाती है। मैंने जब 'विक्रमा-दिय चित्रपट देखा तब मन में इतनी ग्लानि हुई कि उसकी समानता उसी ग्लानि से की जा सकती है जो मुझको 'चन्द्रगुप्त मौर्य' चित्रपट को देखने के कारण हुई थी। मैंने इन दोनों चित्रों की कठोर आलोचनाएँ पत्रों में प्रकाशित की। कदाचित् ही किसी चित्र निर्माता ने उन आलोचनाओं को पढ़ा

हो, एक या आधे ने पड़ा होगा। तो मुझको एक चिनौती मिली—हम ऐतिहासिक चित्र बनाने में यदि इतिहास का नाश करते हैं तो आप ही एकाध नाटक लिखिये। उस चिनौती का उत्तर यह नाटक है। परन्तु मैं इस बात को मानता हूँ कि यह नाटक उनके लिये नहीं लिखा गया है, क्योंकि उन लोगों के स्टूडियो ऐसे नगरों में हैं जहाँ बड़े बड़े पुस्तकालय हैं और जिनमें इतिहास सम्बन्धी पुस्तकें पर्याप्त संख्या में हैं तथा विचित्रालय (Museum) भी। विचित्रालय तो सहज ही देखे जा सकते हैं और चित्रनिर्माता उन्हें देखने का कष्ट भी करते हैं, परन्तु पुस्तकालय ? पुस्तकालय में सिरखपी कौन करे ? वे जानते हैं कि हमारी अधिकांश जनता को अपने इतिहास और पुरानी संस्कृति का यथेष्ट परिचय नहीं है। इसलिये उस जनता के इस अज्ञान का वे लाभ उठाते हैं। परन्तु वह समय निकट है जब चित्र निर्माता उस अज्ञान का सहज लाभ प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

मैंने 'हंस-मयूर' नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर 'प्रभावक चरित्र' वर्णित कालकाचार्य कथानक का उपयोग किया है। जान पड़ता है ईमा से लगभग ७५ वर्ष पूर्व मालव गणतन्त्र की अव्यवस्था ने पहले राजन्य और फिर राजा को उत्पन्न किया। गर्दभिल्ल इसी प्रकार का राजन्य या राजा था। सरस्वती (नाटक की सुनन्दा) के साथ गर्दभिल्ल ने बलान् विवाह किया, परन्तु नाटक में उसका विस्तार अभीष्ट नहीं था। संसार में अब भी ऐसी स्त्रियाँ हैं जो बरसों किसी पुरुष के बलान् अधिकार में रहें और फिर भी उससे रत्नमात्र भी प्रेम न करें। कालकाचार्य ने अपने स्वभाव का जो परिचय नाटक के दूसरे दृश्य में दिया है वह सम्मत है। (जायसवाल का 'हिन्दू राज्य तन्त्र' पृष्ठ ५२) कालकाचार्य ने शकों को लाकर उर्जन और मालव जनपद का नाश कराया, उसके लिये दो उपादान ग्राह्य हैं—एक तो उत्तम भद्रों और मालव-यौधेयों का वैर, जिसका संकेत उषवदात के नासिक गुफा वाले शिलालेख में है; दूसरा कालकाचार्य की प्रतिहिंसा, जो गर्दभिल्ल-कृत अत्याचार से उत्पन्न हुई थी। शकों की विजय के परिणाम को अपनी आँखों देखकर कालकाचार्य

से फिर उज्जैन में न रहा गया और वह दक्षिण-पश्चिम में धर्म-प्रचार के लिये चला गया ।

इस नाटक की भाषा मेरे अन्य नाटकों—और उपन्यासों की अपेक्षा कुछ विलष्ट है । उस युग की मांग के कारण मुझको ऐसी भाषा का उपयोग करना पड़ा । परन्तु हिन्दी की उत्तरोत्तर सर्व-प्रियता के समय में यह भाषा पाठकों—और दर्शकों की भी समझ में आ जानी चाहिये ।

श्यामसी
२१-६-४८

}

वृन्दावनलाल वर्मा

पाँचवाँ संस्करण

कुछ लोगों को सुनन्दा—सरस्वती—का चित्रण जैसा कि पिछले संस्करणों में आया है बुरा लगा । जगह जगह चर्चा हुई, आश्रेप किये गये । इस संस्करण में सुनन्दा—सरस्वती—के चित्रण को स्वाभाविक रखते हुये वह सब हटा दिया गया है, क्योंकि मैं यथाशक्ति किसी का जी नहीं दुखाना चाहता ।

भांसी
२६-३-१९५५

}

वृन्दावनलाल वर्मा

नाटक के पात्र

पुरुष—

गर्दभिल्ल—उज्जैन का राजा

परन्दर—उज्जैन के कापालिकों का आचार्य

कालक—धारा नगरी का राजकुमार, धर्माचार्य

इन्द्रसेन—नलपुर जनपद का नायक, राद का नाम कृतसेन

रामचन्द्र नाग--विदिशा का नाग-राजा

बकुल—एक यवन, माधु ! हालकाचार्य का शिष्य

कुजुल - न्यायिकों और दिगुणों का महाक्षत्रप

भूमक—शक जाति ही जहारात शाखा का एक नायक, क्षत्रप

नहपान— ” ” एक और क्षत्रप

उपवदात— ,, ,, नहपान का दामाद

द्रांगिक, सैनिक, दण्ड पाशिक, चाट, मद पिलाने वाला (शॉडिक)

पक्ष राजा, अस्त्रप दस्यु नागरिक आदालिक ।

खी

सुतन्दा—तालकानार्थ की बहिन, बाद की सरस्वती

तन्वी. गङ्गायव अमक की पत्नी

स्वास्वतां, नर्तकिया, प्रसर याद्वि हाये इ याद्वि

समय—विक्रम संम्बत् के लगभग १० वर्ष पूर्व से सम्भव प्रारम्भ

तव ।

❀ नान्दी ❀

गायन्ति देवाः किल कीतकानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे
स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते
भवन्तिभूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥१॥

[विष्णु पुराण]

[२ । ३ । २४]

देवता स्वर्ग में भी यह गीत गाते हैं—धन्य हैं वे लोग जो भारत भूमि में उत्पन्न हुये हैं । वह भूमि स्वर्ग से भी विशिष्ट है, क्योंकि वहां स्वर्ग और मोक्ष दोनों की साधना की जा सकती है । जो देवत्व भोग चुकते हैं वे मोक्ष के लिये पुनः भारतवर्ष में जन्म लेते हैं, जहां के आदर्श अपवर्ग की प्राप्ति में कारणभूत हैं ।

हंस-मयूर

पहला अंक

—०००००—

पहला दृश्य

[स्थान—धारा नगरी में कुछ दूर का वनस्पण्ड । समय मध्याह्न । आगे २ कालकाचार्य, मुनन्दा श्राविका और वकुल श्रवण और उनके पीछे २ धारा नगरी का राजा तथा कुछ नागरिक गाते हुये आते हैं । आचार्य कालका और वकुल सिंग मड़ाये हैं और गहरे नारङ्गी रङ्ग का कोपन पहने हैं । मुनन्दा का भी कोपन इसी रङ्ग की है । उन तीनों को देहा पर किसी प्रकार का आभूषण नहीं है । भिजा का एक एक कमण्डल हाथ में लिये हैं । नागरिकों में पुरुष विविध भाँति के वस्त्र धारण किये हैं । कोई केवल उष्णीष, कुर्तक, कंचुक और धोती पहने हैं, कोई केवल धोती, उत्तराय प्रावार से शरीर ढके है । नारियाँ रङ्ग-बिरङ्गी साड़ियाँ पहने हैं और केशकलाप किये हैं । नर नरी-सब-कर्ण, ग्रीवा तथा मुजायो को अलङ्कारों से सजाये हुये हैं । राजा वृद्ध है, परन्तु स्वस्थ । सब नागरिक स्वस्थ और दृढ़ शरीर हैं । कालकाचार्य की आयु लगभग चालीस वर्ष की है ! वह गम्भीर और निश्चय-वृत्ति वाला है । भूमध्य का संकुचन बतलाता है कि यह भयानक भी हो सकता है । वकुल भारतीय यवन है । रङ्ग गहरे से कुछ हो हलका आकृति सुन्दर । आँख चञ्चल मुद्रा सक्रिय । आयु लगभग १८ वर्ष । अभी उसकी आँख भीग ही रही

है । सुनन्दा की आयु लगभग पन्द्रह वर्ष की है । अति सुन्दर है । होठों पर हृदयता है और आँखों में सहसा प्रवर्तन, जो धर्म और वर्ग के निशेधों के कारण दब दब कर उभर उभर पड़ता है । नागरिकों में कोई बाँसुरी, कोई बीणा, मंजीर, स्वरमण्डल और मृदङ्ग लिये हैं । ये वाद्य गीत का साथ दे रहे हैं]

❀ गीत ❀

(हम्मीर राग)

वन पर्वत जन पद मधुघोले,
उमग भरी मुस्कानों बोले—

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय,
जीवन-क्रय का हो यह निकाय ।

अहङ्कार पर जय होते ही,
वर्चस ने अपने पट खोले;

वन पर्वत जनपद मधुघोले
उमग भरी मुस्कानों बोले—

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय,
वितरित करना है दया, न्याय ।

कालकाचार्य—(गीत की समाप्ति पर) राजन्य—(थोड़ा सा झटका खाकर) पिताजी, अब आप लौट जायें । दूर निकल आये हैं । धारा नगरी के नर नारियो, आप सब और अधिक कष्ट न करके अपने अपने निवास को जायें, भगवान के आदेशों का स्मरण करते रहें और उनको बर्तते रहें ।

राजा—वत्स ! (तुरन्त दृढ़ होकर) आचार्य कालक ! जनता के हित के लिये जनता के सुख के लिये, देवताओं और मनुष्यों के आनन्द के लिये विचरण करो ! आरम्भ में कल्याण, मध्य में कल्याण और अन्त

में भी कल्याण करने वाले धर्म का, अर्थ और भाव सहित उपदेश करके सर्वांश में पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो ।

सब—बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय ।

कालकाचार्य—भद्रो ! यदि भगवान का सन्देश देते देते, जनता को ज्ञान के मार्ग पर लाते लाते, हमारा शरीर भी ज्ञय हो जाय तो हमारी सुगति हो जायगी ।

सुनन्दा—हम लोग, भगवान की शिक्षा जनता में भर देंगे । अनपवाद अनपघात, संयम, एकान्तवास और चित्तवृत्तियों का नियन्त्रण ये सब, हम जनता को साधना के साथ सिखलायेंगे ।

राजा—(सुनन्दा को मोह की दृष्टि से देखकर) सुनन्दा कितनी विवेकमयी है ? कालक ! आचार्य कालक ! सुनन्दा की आयु मुझको थोड़ा सा व्यथित करती है ।

कालकाचार्य—राजन्य ! आशङ्का न करें । आशङ्का मोह का दूसरा नाम है । हमको मोह न करना चाहिये । मोह एक दूषण है । हमको मोह से निष्कृति पानी चाहिये ।

राजा—तुम मालवों में जा रहे हो हम उत्तमभद्रों का उनसे मनो-मालिन्य है । तुम विदिशा के नागों में जाओगे; वे हमारे शत्रु हैं । तुमको दस्यु कच्छप और मनुष्य भक्षी बनवासी बर्बर जातियां मिलेंगी । मैं तुम्हारे ज्ञान और पुरुषार्थ को जानता हूं परन्तु (गद्गद् कंठ से) सुनन्दा अल्पवयस्क और अति सुकुमार ।

सुनन्दा—मेरी आत्मा न तो थोड़ी आयु की है और न वह निर्बल और अदृढ़ है ।

कालकाचार्य—बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय ।

सब—बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय ।

(नागरिकों के मन में स्वास्थ्य, शक्ति और उल्लास की लहर सजग है, परन्तु वे गम्भीर बनने का प्रयत्न करते हैं)

कालकाचार्य—राजन्य ! मैं फिर कहता हूँ कि आप मोह को त्याग दें हम लोग उज्जैन, विदिशा, महेश्वरपुर, कालञ्जर पद्मावती इत्यादि जनपदों में भगवान का उपदेश सुनार्येंगे । हमारे दृष्टभंगुर शरीर की आपको चिन्ता न करनी चाहिये ।

एक नागरिक—मैं पूछता हूँ, क्या, ये जनपद फिर अन्धकार में समा गये हैं ? क्या वहाँ धर्म और संघ की महिमा लुप्त हो गई है ?

कालकाचार्य—मैं बतलाता हूँ भद्र ! तेरह कोम लम्बी और नौ कोस चौड़ी उज्जैन नगरी में कापालिकों के जीव-बलिदानों और वहाँ के राजा गर्दभिल्ल के पिशाचपन ने उस पावन नगरी, विद्याओं के पीठ को पाप प्लावित कर रखा है । विदिशा के नाग सर्पों की पूजा करते हैं । ब्राह्मण द्वारा यज्ञों में पशुमेध कराते हैं; नलपूर और भद्रावती में उत्तम भद्रों के गणों का शासन होते हुये भी कच्छप डाके डालते हैं और नर-बलि में रस लेते हैं, कालञ्जर में ब्राह्मणों ने बहुत सिर उठा रखा है—

सुनन्दा—और पद्मावती में शकों ने बौद्ध और शैव मतों को मानों परस्पर विभक्त कर लिया है । दोनों मिलकर आर्य व्यवस्था को मिटाना चाहते हैं । हम उनको सुमार्ग पर लायेंगे ।

राजा—शक हम उत्तमभद्रों के मित्र हैं । वे, विदिशा के राजा रागचन्द्र नाग से सब बातों में उत्कृष्ट हैं, जो वर्या-व्यवस्था को बनाये रखने की आड़ में महा कुकर्म करता रहता है ।

कालकाचार्य—वह शुद्धों का उत्तराधिकारी जो ठहरा, जिन्होंने निस्सहाय बौद्धों के तीर्थ-स्थान सांची के स्तूपों को ध्वस्त कर डाला था हम विशुद्ध जैन धर्म के उपदेशों द्वारा उन सब प्रदेशों को स्वच्छ और शुद्ध करेंगे—सच्चे आर्य धर्म की रक्षा करेंगे ।

राजा—प्यारे नागरिको, इन तीनों को आशीर्वाद दो । संसार में पापों की कालिमा बिड़ी हुई है, ये उसको उज्ज्वल करने में सफल हों ।

नागरिक—स्वस्ति ! स्वस्ति !!

वकुल—हम लोग पहले उज्जैन जायेंगे और सबसे पहले वहां के व्यसनो, दुर्गचारी शैव राजा गर्दभिल्ल का परिष्कार करेंगे ।

सुनन्दा—त्रैलोक्य, त्रिप्रा, चर्मण्यवती, सिन्धु, नर्मदा, मधुमति, पुष्पजा इत्यादि नदियों की उपत्यकाओं में हम धमक वन पर्वतों को भगवान के उपदेशों के मधुर मधु से भर देंगे ।

राजा—सुनन्दा, तुम आचार्य और वकुल का साथ छोड़कर अकेली कहां न जाना । व्यर्थ कष्ट मत भेलना ।

वकुल—आचार्य का यह शिष्य साथ में, फिर आचार्य या श्राविका सुनन्दा को कष्ट !

सुनन्दा—चिन्ता और मोह को छोड़िये, राजन्य । मैं यदि मारी जाऊँगी तो पूर्व जन्म का कर्म फल गल जायगा और मैं मोक्ष पा जाऊँगी ।

कालकाचार्य—संघ में आयु किसी अन्तर या परिस्थिति का कारण नहीं बनती । राजन्य, आप सुचित हों । कष्ट हम लोगों का कुछ नहीं कर सकते । गुरु की आज्ञा है—सैनिकों, ब्राह्मणों, उत्पातियों, याचकों हत्यारों और लुटेरों में सामञ्जस्य और समान निग्रह के भाव के साथ पैठ करो । अपकार के आदान में उपकार प्रदान करने से जो मनोबल बढ़ता है उसकी मात्रा आंकी नहीं जा सकती ।

एक नारी—कोई इन सुन्दर साधुओं को मार न डाले !

दूसरा—ठट्टा दे मार डालना । हम उत्तमभद्र, पद्मावती के शक और उनका क्षत्रप घटाक तथा सिन्धुसौवीर के हमारे अनेक शक क्षत्रप मित्र कहां जायेंगे ?

कालकाचार्य—सुचित ! नगर निवासियों, सुचित !!

राजा—मालव, यथेय और आरक—ये तीनों गण हमारे पुराने शत्रु हैं । यदि इनमें से किसी ने भी इन वीतरागियों का अहित किया तो—

कालकाचार्य—न्याय और तर्क द्वारा सब प्रकार की कलह शान्त की जा सकती है । उत्तमभद्रों और इन तीनों गणों में परस्पर मैत्री

स्थापित करवाने का मैं उपाय करूँगा। उन लोगों के भ्रमों का उच्छेदन हो जायगा।

एक नागरिक—उस प्रकार के भ्रमों का अधिक प्रबल उच्छेता ग्यान से निकला हुआ खड्ग और धनुष की डोरी पर चढ़ा हुआ बाण ही होता है।

कालकाचार्य—सावधान ! शान्त !! नागरिक। हिंसा से निरत होने का साधन हिंसा नहीं हो सकती। हमारे संघ ने इन सब को सभ्य और संस्कृत करने का संकल्प कर लिया है। भगवान का उपदेश सुनकर ये दैत्य मार्ग को छोड़कर दिव्यता को पा जायेंगे।

सब—स्वस्ति ! स्वस्ति !!

राजा—स्वस्ति। असुर पर सुर की विजय होगी। इन्द्र, कुबेर और वसु इन साधुओं की पूजा करेंगे।

कालकाचार्य—भद्रो, हम लोग आपकी कृपा और आशिष के आभारी हैं। अब आप लौट जायें। (मुस्कराकर) यह थोड़ा-सा समय इस वनखण्ड में कल्याणकारी चर्चा में व्यतीत हुआ है। अभी संध्या होने में विलम्ब है, पर हमारे पहले विश्राम का विहार अभी दूर है और आप लोग धारा नगरी से बहुत बाहर निकल आये हैं।

सब—कुशलमस्तु।

(राजा नीचा सिर कर लेता है और खिन्न होकर लौटता है। नगर निवासी संघत आल्हाद में हैं। वे सब प्रणाम करके धीरे धीरे लौट पड़ते हैं। पहले वे तीनों चले जाते हैं, फिर नगर निवासी। इन सबके चले जाने पर वे तीनों फिर आ जाते हैं)

सुनन्दा—आचार्य ! क्षिप्रा तो बड़ी सुन्दर होगी ?

कालकाचार्य—सरिता सुन्दर है, परन्तु उसके तट पर रहने वाले कुरूप हैं। जैसे कामना और वासना, विनय और आकांक्षा कमल—परिमल और दुर्गन्ध, पुचकार और ताड़ना, तथा कल्पना और सम्भावना एक नहीं होते। वैसे ही क्षिप्रा का सौन्दर्य और वहाँ के राजा

गर्दभिन्न का कुरूप एकरस नहीं हो सकते । इनको सुसङ्गत करना है, व्यवस्थामय ।

वकुल—सुना है मालवों के सहवर्गी कच्छप और आरक उत्तमभद्रों की सीमा और भूमि के प्रति कोई श्रद्धा नहीं रखते । लुटेरी और बटमारी करते हैं, बलिदान के लिये बालक और बालिकाओं को चुरा ले जाते हैं, ग्रामों में आग लगाते हैं । विन्ध्यप्रदेश के हमारे दशार्ण-खण्ड में यह सब नहीं हो पाता ।

सुनन्दा—वहां भगवान के उपदेशों का अधिक आदर होगा ।

वकुल—हां बहिन, जैसा मनोहर उपदेश वैसा ही मनोहर प्रदेश । मनोरम हरी भरी घाटियां । उपत्यकाओं की सरस मञ्जुल दूब सुस्कराती हुई और दूब की दमकती हुई ओस पर हँसती नाचती हुई रवि रश्मियां—

कालकाचार्य—इस वासना लित उद्गार से मन को विरक्त करके केवल उस वचन के स्मरण पर स्थिर करो—‘बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय’

वकुल—(संकुचित होकर, बरबराते हुये) ‘बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय’ ।

कालकाचार्य—हां ऐसे ही । (पश्चिम की ओर देखकर) सूर्यास्त में विलम्ब नहीं है । दूर तो बहुत निकल आये हैं, परन्तु अभी अपने वहार के निकट नहीं पहुंचे हैं ।

सुनन्दा—आचार्य ! मुझसे एक मिथ्या विचार का दोष हो गया है । कह देने से मुक्त हो जाऊँगी ?

वकुल—एक मुझसे भी हो गया है ।

कालकाचार्य—धर्म चर्चा का निरन्तर करते रहना महा मङ्गल है । कह डालो ।

सुनन्दा—जब उज्जैन के राजा गर्दभिन्न की चर्चा हो रही थी तब मेरे मन में आया था—उसको निकाल कर प्रसाद में विहार स्थापित

करूंगी और वहीं रहूंगी । यह मिथ्या विचार है हमको प्रसादों से कोई प्रयोजन नहीं ।

कालकाचार्य—तुम दोषमुक्त हुई ।

वकुल—और मेरे मन में आचार्य यह उठा था कि जितने दस्यु, बटमार, हत्यारे और कापालिक हैं—गर्दभिन्न समेत,—उन सबको खडग के घाट उतार दूँ ।

कालकाचार्य—तुम भी दोष मुक्त हुये ।

(नेपथ्य में खड़बड़ होती है)

सुनन्दा—(चौंकर) वन में यह कैसा शब्द है आचार्य ?

वकुल—कुछ पंरों की आहट जान पड़ती है । प्रकाश बहुत कम रह गया है ।

कालकाचार्य—(ठिठककर, परन्तु संयत स्वर में) होगा । हम लोग मुनि हैं । कोई चिन्ता नहीं, चले चलो ।

(वे लोग बढ़ते हैं)

(वृद्धों के भुरमुट में कुछ दस्यु यकायक आ जाते हैं । वे सशस्त्र हैं । दस्यु उष्णीष, कुतर्क और जांघिये पहिने हैं । उनके आने के पहिले ही सुनिन्दा एक पेड़ के पीछे छिप जाती है)

कालकाचार्य—बन्धुओ, क्या योजना है ?

दस्यु सरदार—बन्धुओ नहीं, बापुओ कहो । तुम लोग उत्तमभद्र हो न ? (वकुल सिकुड़ता है)

कालकाचार्य—ये—अब श्रमण हैं । कौन हो ? क्या चाहते हो ?

दस्यु सरदार—हम लोग जलपुर जनपद के कच्छप हैं और मालवों के अतिथि । तुम्हारी सीमा में कुछ मौज के लिये आ पड़े हैं । कच्छप नाम ही हमारा और हमारे रंगडंग का पूरा-समूचा परिचय दे देता है । (सुनन्दा को भाँकते हुये देखकर) अच्छा ! एक और भी हैं !! इधर आओ तुम !!!

(मुनन्दा आ जाती है)

कालकाचार्य—हम लोग त्यागी विरागी हैं ।

(मुनन्दा भयभीत है)

दस्यु सरदार—ओह लड़की है ! तुम निर्भय रहो तुमको कोई नहीं छुयेगा ।

पकुल—हम तानों साथ हैं ।

दस्यु सरदार—समझते थे कोई अच्छी चिड़िया हाथ लगेगी, परन्तु सगुन बिगाड़ने को बंद ये हमारे माग्य में तुम ! इसलिये हे दोनों घुटमुन्ड, मुष्टन्ड गुन्धमरे, ये कपड़े उतारो, तंगाभोगी दो और लथोटी तथा कमण्डल के साथ यहाँ से अपने जनपद की ओर खिसक जाओ । यदि यहाँ तुम दूसरों को घुटमुण्ड वनान के लिये कुछ और टहरे, तो हम तुम्हारी हड्डियों को हाली माई की भेंट करेंगे ।

कालकाचार्य—(निर्भीकता के साथ) हम मरने से नहीं डरते ।

दस्यु सरदार—परन्तु कपड़ों का त्याग करने से तो डरोगे ?

कालकाचार्य उससे भी नहीं भयभीत होते । हमको डर लग रहा है तुम्हारी आत्मा की भावी दुर्गति का ।

दस्यु सरदार—आत्मा के बच्चे उतार कपड़े ! कपड़ों की किसी सीबन में, या कहीं नोचें, छिपाये होगा मुद्रायें या मोने की जयमाला । उतार, उतार ! हे तंगाभोगी !!

कालकाचार्य—(निर्भयता के साथ) सुनो बन्धुओ ! यह जीवन कितने दिन का है ? उस माग्य की बात मोनों जब तुम्हारा यह फूला हुआ शरीर ताड़ों का ढाँचा मात्र रह जायगा । ज्ञान की ज्योति से अपने भीतर के तम को भगाओ, तथा

दस्यु सरदार—तथा के भूत, जल-जलूल मत बक । यह सब उत्तम भद्रों को सिखलाया कर । इस विन्ध्याचली छोर की कन्दराओं में इस प्रकार की सब बकवास न जाने कहां समा जाती है । उतार कपड़े नहीं तो देता

हूँ दो ठूँसे नाक पर जहाँ से बह पड़ेगी लाल लाल ज्योति की धारा, और टपक पड़ेंगे दो चार दांत यदि मुँह में हों तो । (मुक्का तानता है)

कालकाचार्य—बन्धुओ, कुमार्ग को छोड़ो—

दस्यु सरदार—परन्तु तुम इस वन पर्वत को छोड़कर अपने उत्तम भद्रों की ओर काला मुँह न करोगे ! पटक दो जो इसको और उतारो इसके कपड़े !! फिर उत्तम भद्रों के कुछ गांव लूटने हैं—और न लूट सके तो आग लगाने से तो चूकने वाले नहीं । सावधान कर देना रे अपने घुटमुन्डे भाइयों को ।

वकुल—ओह ! न हुआ हाथ में खड्ग !!

(उन दोनों से दस्यु चिपट जाते हैं और लड़ोटी के सिवाय उनके सब कपड़े छीन लेते हैं । सुनन्दा घबराकर मुँह ढाँक लेती है । वकुल के कपड़ों में कुछ चाँदी की और ताम्बे की मुद्रायें मिलती हैं)

दस्यु सरदार—(प्रसन्न होकर) हमने कहा था न कि कपड़ों में मुद्रायें खोसे होगा । जाओ बेटा अब ।

वकुल—बन्धुओ ! हमको कुछ तो लौटा दो । हमको दूर की यात्रा करनी है । मार्ग व्यय ही दे दो पाथेय के लिये ।

दस्यु सरदार—अच्छा ताम्बे की मुद्रायें ले जाओ । भागो नहीं तो मेरा मन बदल जायगा ।

कालकाचार्य—मत लो मुद्रायें । भगवान इनका भला करें ।

(वे तीनों चले जाते हैं)

दस्यु सरदार—(हँसकर) जीवन थोड़े दिन का है ! हो, हो ? हादों का ढांचा !! हो, हो !!!

एक दस्यु—(हँसकर) और ज्ञान की ज्योति से भीतर के अंगरे को भगाओ ! हो, हो !!

सब—(हँसकर) भगा दिया । भगा दिया ।

(वे सब हँसते हुये जाते हैं)

दूसरा दृश्य

[स्थान—उज्जैन । महाकाल के मन्दिर के सामने का मैदान । इधर उधर छायादार वृत् । एक ओर कन्दरा । बीच बीच में मङ्गल घटों पर कदली मण्डप, तोरण और वितान । थोड़ी दूर क्षिप्रा नदी बह रही है । कुछ दूरी पर चौड़े सड़के मार्गों वाला नगर । उत्सव के कारण मैदान में भीड़ भग्भड़ । एक स्थान पर कुक्कट लड़ाये जा रहे हैं । पुरुष रङ्ग-बिरंगे कुर्तक, कंचुक, धोतियाँ पहिने हुये हैं । कोई उष्णीष बांधे हैं और कोई नंगे सिर हैं, सिर के बाल पीछे फहराने वाले । गले में हार कानों में कुण्डल, भुजाओं पर भुजबन्ध और कमर में करधनी । पैरों में चोचदार जूते जिनके पीछे का भाग पिंडली के मध्य तक आकर लौट गया है—जैसा कि विन्ध्यखण्ड में ग्रामीण अब भी पहिनते हैं । कोई कोई सटे पैजामें भी पहिने हैं । कमर में खड्ग और पीठ पर छोटी ढाल है । जो वयस्क हैं वे दाढ़ी रक्खे हैं । कुछ नंगे पांव हैं—केवल धोती पहिने और उत्तरीय ओढ़े हुये । माथे पर लगभग सबके त्रिपुण्ड्र हैं । स्त्रियां कन्चुकी और साड़ी या लहंगा पहिने हैं । गले में हार बनमाला माथे पर बिन्दी और किसी के ललाट पर स्वर्ण पटवन्ध । कुछ केश कलाप पर पुष्ट किरीट । किसी किसी के केश बन्धनों से बाहर छिटके हुये । जिनका गुणाओं में स्वर्ण की रत्नजटित लड़ें गूँथी गई हैं । कानों में विविध प्रकार के कर्ण-फूल । गले में मोहनमाला । हाथों में चूड़ी, कङ्कण और मङ्गल-मोहन । कमर में किंकरी और आघो जांघों तक झूलती हुई मेखला । पैरों में कढ़े, तोड़े, पायल और नूपुर । स्त्री पुरुष सब स्वस्थ, पुष्ट और प्रसन्न]

नेपथ्य में बीणा, स्वर्ग-मण्डल, बांसुरी और मञ्जीर के साथ गायन—

ॐ नमः शम्भवाय च मयो भवाय च

ॐ नमः शङ्कराय च मयस्कराय च

ॐ नमः शिवाय च शिवतराय च

(एक ओर से कुछ स्त्रियों का गायन और नृत्य करते हुये प्रवेश)

❀ गीत ❀

(राग—धानी)

भरे कलश घर आये,
मङ्गल साज सजाये,
मणि मुक्ता से भलक रहे हैं,
दामिनि युति से दमक रहे हैं ।
रत्नों द्वार रचाये, जनमन मोद समाये;
भरे कलश घर आये,
मङ्गल साज सजाये ।

एक स्त्री—मैं तो नाचते नाचते थक गई । थोड़ा विश्राम करूँ ।

दूसरी स्त्री—मेरा शरीर तो नहीं, परन्तु मन नाचने में थक गया ।
उस स्त्रियने वाले बड़े कदली—मण्डप का खेल अभी आरम्भ नहीं हुआ ?

पहली स्त्री—खेल कहती हो उस क्रिया को ! वह तो जीवित
समाधि होगा; साँस टूट गई तो मरा ! तुम उसे खेल समझती हो !!

दूसरी स्त्री—खेल न सही बाई, संकट सही । परन्तु यह निश्चय
है वह मरेगा नहीं, क्योंकि इतने बड़े उत्सव में मरने के लिये यहां कोई
नहीं आयगा । मुझको अचम्भा होता है वह इतनी लम्बी साँस, इतनी
देर तक कैसे साधता होगा । क्या वह अपनी क्रिया को समझावेगा भी,
या सब गुपचुप ही करेगा ?

पहली स्त्री—तुम सीखोगी ।

दूसरी स्त्री—क्यों, क्या हो गया ? जो काम पुरुष कर सकते हैं
वह स्त्रियां भी कर सकती हैं । बौद्धों का एक मठ यहां है न ? उसमें तो
स्त्रियां न जाने क्या क्या क्रियाएँ करती हैं ।

पहली स्त्री—अरे रे, वे तो हँसती नहीं हैं । बोलती हैं तो ऐसे
जैसे किसी ने होंठ सीं दिये हों । हमको तो ऐसी क्रिया नहीं सीखनी ।

दूसरी स्त्री—पुरुषों की समानता करने चली थीं, अब भिन्नक उठीं न ?

पहली स्त्री—अरी, हम लोग घर द्वार छोड़कर क्या मर्तों की गुप्त सुप्त भुगतने को जन्मी हैं ? सीखें नहीं, पर जान तो लें कि जीवित-समाधि कैसे ली जाती है ।

दूसरी स्त्री—अरी वाई, इन लोगों ने यह सब छिपा कर रक्खा है । कहते हैं गुप्त रखो, गोपनीय है । ऐसा इसमें क्या है जिसे ये छिपाते होंगे ?

पहली स्त्री—दूसरों को हानि पहुंचाने की उस क्रिया में कोई शक्ति होगी इसलिये छिपाते होंगे ।

दूसरी स्त्री—ओ—हां तुमको तो सब शास्त्र पढ़ा दिया गया है न ! सब भेद मालूम हो गये हैं न !!

(नेपथ्य में कोलाहल—‘चलो’ ‘हटा’ । दूसरी ओर में पुरन्दर कापालिक का प्रवेश । उसके पीछे पीछे कुछ और कापालिक केश रखाये हुये और जूट बांधे हुये । गले में मुण्डमाल, जो सुमन मालाओं से लगभग ढकी हुई है । कानों में कुण्डल, भुजों पर रत्न-जटित बलय, शरीर पर भस्म और उपवीत । सब की कमर में कुठार और हाथ में डण्डे । किसी किसी के हाथ में प्याली । जय महाकाल, कहते हुये कदली मण्डप के नीचे के आसनो पर जा बैठते हैं । बीच की एक ऊँची आसन पर पुरन्दर । सब पुष्ट शरीर । कपड़े भगवे । कोई कोई व्याघ्र चर्म लपेटे हैं ।)

पहली स्त्री—कैसे भयातक दिखते हैं ये सब !

दूसरी स्त्री—सीखना है इनसे जीवित-समाधि लेने की क्रिया ?

पहली स्त्री—हाथ जोड़े मैंने ! मैं तो ऐसी ही भली । जीवित-समाधि के बिना ही किसी दिन चैन के साथ मर जाने की साथ रखती हूं ।

दूसरी स्त्री—ओ हो, अब यह शास्त्र !

एक कापालिक—अब हमारे गुरु महाराज आचार्य पुरन्दर जी जीवित समाधि लेते हैं । देखो कैसी विलक्षण बात है ।

(एक गड्ढा खोदा जाता है)

(दूसरी ओर से कालकाचार्य सुनन्दा और वकुल का प्रवेश)

पहली स्त्री—अब ये आये जो सब बातें उल्टी उल्टी कहेंगे ।

वकुल—(सुनकर) नहीं देवी, हम सन्यासी हैं । तुमको सच्चा ज्ञान देने आये हैं । सामने जो कुछ हो रहा है और होने वाला है, सब आडम्बर है, सब पाखण्ड है । यह सब वासनाओं का खुला हुआ द्वार है । यह विष की खेती है । अरुण की खेती करो । श्रद्धा के बीज बोओ । उस पर तप की वर्षा होगी । प्रज्ञा के हल, पापों से लाज करने की हरिस, मन की जोत और स्मृति की फार से अपने जीवन खेत को जोतो । सत्य तुम्हारा खुरपा हो, उत्साह बल हो । यही सच्चा योग क्षेम है । इसी से अश्रुत फल मिलेगा । सामने जो हो रहा है वह विष की खेती है । यह जो कुक्कुट लड़ा रहा है इसको विदित होना चाहिये कि किसी भी पक्ष काल इसको अपना प्रास बना लेगा ।

कालकाचार्य—भद्रे—

दूसरी स्त्री—तुम्हारा होय भद्र । हम सधवा है, यह महाकाल जी की उज्जैन नगरी है, और हम मालव हैं, इतना स्मरण रखना ।

(गड्ढा तैयार हो गया है । पुरन्दर उसमें समाधि लेने वाला है)

एक कापालिक—आचार्य पुरन्दर पूरे एक महीने की समाधि लेने की शक्ति रखते हैं, परन्तु वे कुछ घड़ियों की ही समाधि लेंगे । जैसी कुछेक घड़ियां बच हा महोने । सावधान होकर देखो ।

कालकाचार्य—हे मालव नर-नारियो, मेरी बात सुनो । गङ्गा, यमुना, नर्मदा, लिप्ता चाहे किसी भी नदी में कलुषित कर्म करने वाला मूढ़ कितना भी स्नान करे, पर शुद्ध नहीं होगा । यह क्रिया योग का असत् और मिथ्या उपयोग है । योग की सत्य क्रियायें केवल मनोनिग्रह और चेतन समाधि के लिये हैं । उनको शुद्ध करने के उपकरणों से मन को निर्मल करने वाले उपकरण भिन्न होते हैं । तन साधन मात्र है, मन संचालन का केन्द्र । इस केन्द्र को शुभ और शुभ्र बनाओ ।

(इसी समय एक छोटे कदली-विनान के नीचे एक ब्राह्मण समिधा जलाकर इवन करता है । कालकाचार्य का उस ओर ध्यान जाता है) हे ब्राह्मण, इन लड़कियों को जलाकर तू क्यों शुद्धि मनाता है ? यह शुद्धि नहीं है । यह तो एक बाहरी उपादान है । पंडित लोग इसको शुद्धि नहीं कहते । अपने भीतर की ज्योति जगा वही सब कुछ है ।

ब्राह्मण—चुप ! पांडित्य मत बघार । हम तुम्हको युगों तक पढ़ा सकते हैं ।

एक कापालिक—तुम दाल-भात में मूयलचन्द्र कहां से आ गये जी ? देखना हो तो चुप—चाप खड़े रहो, नहीं तो नौ दो ग्यारह हो जाओ ।

(पुरन्दर गड्ढे में खड़ा हो जाता है)

कालकाचार्य—अरे मूर्ख, इस जटा जूट के रखा लेने से तेरा क्या बनेगा ? और क्या यह व्याघ्र चर्म तुम्हको मुक्ति देगा ? व्याघ्र किसी समय वन में स्वच्छन्द विहार करता होगा और वन की शोभा रहा होगा । तूने या तेरे किसी विचारहीन भक्त ने उस निस्महाय व्याघ्र को मार डाला और अब तू उसके चर्म से अपने इस नाशवान शरीर को सजाये फिरता है ।

कापालिक—देखो, बहुत बक-बक मत करो । हमारे धर्म में विक्षेप मत करो ।

कालकाचार्य—तू अपने किये पापों से अपने को मलिन बना रहा है पाप छोड़ दे, शुद्ध हो जायगा । यह धर्म नहीं है ।

पहली स्त्री—बाबा, तुमको यही अवसर हमारे आनन्द को नष्ट करने के लिये मिला ? हाथ जोड़ती हूँ । देख लेने दो । हम थोड़ी देर में अपने अपने घर चली जायेंगी । तब मन चाहे उपदेश दे लेना । हैं—देखो तो ! चुप ही नहीं रहते ।

कालकाचार्य—जिस समय चित्त किसी कारखवाश जड़ हो जाता है उस समय हित अहित कुछ समझ में नहीं आता । बर्तन के पानी में

काला रङ्ग डाल देने के बाद जैसे उसमें हमें अपना प्रतिबिम्ब ठीक ठीक नहीं दिखलाई देता, उसी प्रकार जिसका चित्त विकारमय और व्यग्र हो गया है, उसे अपने हित अहित का बोध नहीं रहता ।

दूसरी स्त्री—चलो बाई, घर चलें । इन बाबा भिक्षुओं के मारे मेलों टेलों में कुछ भी आनन्द नहीं मिलता ।

(स्त्री-पुरुष जाने को उद्यत)

कापालिक—ठहरो, मालव नर-नारियो, ठहरो । हमारी भुजाओं में पर्याप्त बल है । ये शकों और तुखारों के भाई बन्द हैं । उपदेशों की आड़ में हमको पुरुषार्थ रहित करना चाहते हैं । हम अभी निकाल बाहर करते हैं ।

कालकाचार्य—अरे ! यह तेरा गर्वीला रूप एक दिन जीर्ण शीर्ण हो जायगा । इस देह को एक दिन गल गलकर मग्न हो जाना है । इस घृणित देह पर इतना गर्व और दूसरों की अवहेलना करना, तेरी महान् मूर्खता का प्रमाण है ।

कापालिक—(पास आकर) तुम कोई घुटी खोपड़ी बौद्ध या जैन हो ? कौन हो ?

कालकाचार्य—(दृढ़ता पूर्वक) दोनों हैं अथवा कोई, अथवा कुछ नहीं । भगवान का बहुत छोटा सेवक ।

कापालिक—क्यों व्यर्थ ही रार ठान रहे हो ? हम लोग साधारण शैव नहीं हैं । हम भैरव-कापालिक हैं जिनको बलिदान के लिये तुम्हारे सरीखे नर-मुण्डों की कभी कभी आवश्यकता पड़ जाती है । यह एक सुन्दर छोकरा माता के लिये अच्छा मुण्ड दे सकता है । और यह क्या अरे ! एक सुन्दर छोकरी भी लिये हुये डोल रहे हो ! इसको चौपट करने के लिये क्यों उतारू हुये हो ? भागो नहीं तो अब डण्डे का उपदेश मैं देता हूँ ।

(नेपथ्य में 'मालवगण की जय,' का शब्द होता है और फिर 'हटो बचो का)

(उज्जैन के अधिप गर्दभिल्ल का प्रवेश । तीसरी शताब्दी का सुन्दर पुरुष । वेशभूषा उज्जैन के समवयस्क पुरुषों जैसी । सिर पर छोटा-सा मुकुट, केवल यही विशेषता । पीछे पीछे कुछ सुसज्जित योद्धा जूते, पजामे, कुर्ते, अङ्गूरखे और उष्णीष बांधे हुये । उज्जैन के कुछ प्रमुख दार्थे बायें । कोई साज-सिङ्गा या धूमधाम नहीं । इस युग में दो महत्त्वपूर्ण आगे का राज-रूप अभी विकसित नहीं हुआ है)

गर्दभिल्ल—(उपस्थित जनता को पहले प्रणाम करके) नमस्कार मालव नर-नारियो ।

(सब जन सम-अभिवादन करते हैं)

गर्दभिल्ल—कापालिक जी, क्या बात है । क्या ये जैन साधु अथवा बौद्ध भिक्षु हैं ? क्या कोई विवाद चल रहा है ?

कापालिक—राजन्य ! हमारे आचार्य पुरन्दर जी जीवित समाधि का प्रदर्शन कर रहे हैं । वे गर्त में उतर भी चुके हैं । परन्तु यह व्यर्थ ही गाली दे रहा है । हम लोगों को किसी की भी गाली सुनने का अभ्यास नहीं है ।

सुनन्दा - हमको गाली सुनने का अभ्यास है, कापालिक ! परन्तु हम गाली खाकर और कठोर बचन पोंकर भूले भटक जनपदों को जान का मधु ब्रांते करते हैं । हमको तुम क्षुब्ध नहीं कर सकते ।

गर्दभिल्ल—जान क्या आप लोग बौद्ध श्रमण हैं ।

सुनन्दा—नहीं हैं ।

गर्दभिल्ल—कहाँ से आना हुआ ?

वकुल—हम लोग धारा से आये हैं ।

गर्दभिल्ल—धारा से ! अस्तु । आप हम मालवगण के अतिथि हैं ।

कापालिक जी, जाओ अपना काम देखो ।

वकुल—ये आचार्य कालक हैं—धारा के राजकुमार, और, ये आशिका सुनन्दा राजकुमारी हैं ।

कालकाचार्य—हमारा यह परिचय निरर्थक है ।

सुनन्दा—भ्रांति में डालने वाला ।

(गर्दभिल आदर पूर्वक प्रणाम करता है)

गर्दभिल—आप हमारे सम्भ्रान्त, पाहुने हैं । मालवगण का मधुपर्क हमारे भवन में ग्रहण कर्जिये न ।

कालकाचार्य—जी नहीं । हम लोग म कर के भूखे नहीं हैं । हम-लोग ज्ञान प्रवार के भूखे हैं । सम्मान का मोह अज्ञानियों का लक्षण है ।

कापालिक—मालवगण में अनेक श्रावक और भिक्षु आते हैं । अपनी बात कहते हैं और चले जाते हैं, परन्तु ऐसे दम्भी न तो यहाँ प्रवेश पाते हैं न स्थान ।

(अन्य कापालिक आ जाते हैं)

गर्दभिल—इस प्रकार का व्यवहार मालवगण की शिष्टता को शोभा नहीं देता । ये हमारे अनिधि हैं । इनका अपमान नहीं किया जाना चाहिये ।

वकुल—हमने जितनी अभद्रता उज्जैन में पाई उतनी और कहीं नहीं । ये बखरी के परनाले हैं । बहते हों तो बहें हम उपेक्षा करते हैं ।

(कापालिक दांत पीसते हैं)

एक कापालिक—हमको आज नर-बलि भी चढ़ाना है (वकुल की ओर घूरता है)

(कोलाहल होता है)

गर्दभिल—शान्त, कापालिक तपस्वियो, शान्त नर नारियों ।

(लोग शान्त हो जाते हैं)

कालकाचार्य—हमको विदित है इन कापालिकों और अन्य शैवियों ने जैनियों को भी त्रास दे रखा है । वे भयभीत होकर पिछड़ गये हैं, परन्तु हम उत्तमभद्र हैं । हमारा दमन नहीं किया जा सकता । हम इनको बोध, ज्ञान और प्रकाश देने आये हैं ।

ब्राह्मण—(हवन कुण्ड से उठकर) अरे, हम तुम सबको जानते हैं समान-व्यापी पाखण्डी और धूर्त !

कालकाचार्य—रोगी को न तो वैद्य अच्छा लगता है और न औषधि भाती है । ब्राह्मण, तुम तो रोगियों में महान जो हो । हम और हमारा उपदेश तुमको क्यों हितकर लगने लगा ।

(कोलाहल होता है)

गर्दभिल्ल—ब्राह्मण सावधान ! साधुओं यहां से जाओ । मालवों के राजन्य की आज्ञा है ।

(इसी समय पुरन्दर सिंगा बजाता है, सब कापालिक उसके पास दौड़कर चले जाते हैं । कालकाचार्य सुनन्दा और वकुल का निश्चित वृत्ति के साथ प्रधान । गर्दभिल्ल सुनन्दा को स्नेह और आदर की दृष्टि से देखता है । सुनन्दा उसकी ओर देखकर गर्व के साथ दूसरी दिशा में देवती हुई चली जाती है)

(दूसरी ओर से इन्द्रसेन का प्रवेश । इन्द्रसेन यौवन में है । शरीर लम्बा और दृढ़ । केश पीछे की लौटे हुये । कमर तक की अङ्गुराखी और धोती पहिने है । जूते वैसे ही । आभूषण उसी प्रकार के पहिने है जैसे मालव जनपद के अन्य पुरुषों के हैं । कमर में तलवार, पीठ पर छोटी ढाल । उसकी गम्भीर आकृति शान्त स्थिति से भीग सी रही है । नेत्र सतेज, परन्तु स्थिर हैं । भ्रूमध्य से कुछ ऊपर केसर का बिन्दु लगाये है । छाती के नीचे तक मोतियों से जुड़ा हुआ स्वर्णहार पहिने है, जिसके बीचों बीच एक बड़ा मणि है । गर्दभिल्ल और इन्द्रसेन परस्पर अभिवादन करते हैं—बहुत थोड़ा मस्तक झुका कर । सब नागरिक अभिवादन करते हैं)

गर्दभिल्ल—स्वागत मालव-गौरव ।

इन्द्रसेन—धन्यवाद राजन्य । अभी कुछ कोलाहल हो रहा था । क्या था उसका कारण ?

गर्दभिल्ल—(पुरन्दर के मण्डप के पास जाकर) धारा के जैन सन्यासियों और कापालिकों में कुछ वितण्डावाद हो गया था । सन्यासियों में वहां के राजकुमार और राजकुमारी भी थे । चले गये । अब हो न आचार्य पुरन्दर का योग प्रदर्शन ?

इन्द्रसेन—हो राजन्य । उत्तमभद्रों के राजकुमार और राजकुमारी !
हूँ । आरम्भ हो । मैं आचार्य के दर्शन करने आया था ।

(नमस्कार करता है । पुरन्दर वरद हस्त करता है । पुरन्दर पद्मासन लगाकर प्राणायाम करने के उपरान्त समाधि लेता है । गड्ढा पूर दिया जाता है और पाट भी दिया जाता है । नर नारी नाचते हुये 'जय महाकाल जय महाकाल,' कहते हैं)

इन्द्रसेन—राजन्य, आज उत्सव की समाप्ति का दिन है । मैं कल नलपुर चला जाऊँगा ।

गर्दभिल्ल—नहीं आर्य । अभी और कई प्रकार के उत्सव होने को हैं । आपके यहां पधारने से उज्जैन-निवासी आनन्द में झूम उठे हैं । कुछ दिन तो और ठहरिये ।

इन्द्रसेन—मथुरा से आगे बढ़कर पद्मावती में शकों ने पैर रोप लिये हैं । उत्तमभद्रों ने उनका साथ दिया है, और दे रहे हैं । उधर सिन्धु सौवीर, सुराष्ट्र, लाट और परान्त में भी बौद्ध धर्म की आड़ में उनको ठौर मिलते जा रहे हैं । यौधेय, मालव आरक इत्यादि सब गणों के सामने मंकट सिमटता सा आ रहा है । प्रतिरोध का सङ्गठन करना है । मुझको अब विदा लेनी होगी ।

गर्दभिल्ल—तो क्या जनता के खेलकूद, उत्सव स्थगित करने पड़ेंगे ?

इन्द्रसेन—नहीं तुरन्त तो नहीं, परन्तु इनको संक्षिप्त कर देना होगा ।

गर्दभिल्ल—देखूँगा—अब आप कहाँ जायँगे ?

इन्द्रसेन—पहले विदिशा । वहाँ के रामचन्द्र नाग को सजग करना है । विन्ध्यखण्ड के तितर-बितर जनपदों को एक माला में गूँथना है । उत्तम-भद्रों की स्वार्थ-सुगन्धता का दमन भी एक समस्या है । दूसरी कठिन समस्या आन्ध्रनायक शातकर्णि को इस समय अश्वमेध यज्ञ करने से रोकना है । प्रयत्न करूँगा । आप मालवों को सचेत रखिये ।

गर्दभिल्ल—हम लोग शातकर्णि से नहीं दूँगे । उत्तम-भद्रों को ठीक करने के लिये हमारे मित्र यौधेय ही बहुत हैं ।

इन्द्रसेन—उत्तम-भद्रों और यौधेयों का: गुप्ता का सुलभाने के लिये याबा सा समय चाहिये। शातकणि वीर, वांद्रमान, और प्रबल हैं, परन्तु उसको छत्र, चंवर और सिंहासन की जालभा लग गई है। इस जालसा पर महानुभूति के साथ विचार करना सम्भव है, तब हम शक-पुलिन्दों को अपने देश से निकाल बाहर कर दें।

गर्दभिल्ल—फिर भी आर्य हम अपना अस्तिव्य जातकणि के हाथ में नहीं सौंप देंगे।

इन्द्रसेन—गणतन्त्र नहीं नष्ट हो सकेंगे, गंगासा रखिये। इस समय अनेक संस्थाएँ उठ खड़ी हुई हैं। उनके समाधान में विलम्ब नहीं होगा। शीघ्र मिलूँगा। नमस्कार। उज्जैन निवासियो, नमस्कार। (जाते हुये लौटकर) राजन्य खेलकूद की अतिशयता में मालवजन की शक्ति और उमङ्ग को अब और अधिक मन बिखरने दीजिये। ये दिन कुक्कुट लड़ाने के नहीं हैं।

गर्दभिल्ल—जनता मनोरंजन चाहती है। उससे शक्ति का वर्धन होता है, परन्तु आगे अधिक संयम के साथ काम लिया जायगा।

इन्द्रसेन—हूँ—ऊँ—आप प्रयत्नों में सफल हों, मेरी यही कम्ना है।
(जाता है। इन्द्रसेन को सब आदर पूर्वक विदा करते हैं)

तीसरा दृश्य

[स्थान—उज्जैन नगर के बाहर, क्षिप्रा नदी का तट। समय रात्रि। अंधकार। नेपथ्य में हवन कुण्ड में आग जल उठती है। परदे पर, भीतर चलने वाले कापालिकों की छाया पड़ रही है। कुछ कापालिक एक युवक को बँधा हुआ लाते हैं। उसके मुँह में कपड़ा ठूँसा गया है। वे उसको नीचे डाल देते हैं। दूसरी ओर से कालकाचार्य और सुनन्दा का प्रवेश।]

सुनन्दा—(धीरे से) वह देखिये आचार्य ! वह क्या है ? यह आग अपने पेट में किसी बीभत्स को छिपाये है। वकुल कहां होगा ?

कालकाचार्य—मेरे पीछे पीछे आओ सुनन्दा ।

(दोनों दबे पांव नेपथ्य की ओर हवन कुण्ड की दिशा में बढ़ते हैं । आगे के धूमरे प्रकाश में वकुल इन दोनों को पहिचान लेता है । हिलता है, बन्धनों को तोड़ने का उपाय करता है, परन्तु व्यर्थ । कुछ कहना चाहता है, किन्तु कंठ रुद्ध है । कालकाचार्य और सुनन्दा को अकस्मात् अपने इतने निकट देखकर कापालिक हक्के-बक्के से खड़े हो जाते हैं । कालकाचार्य और सुनन्दा वकुल को पहिचान लेते हैं)

सुनन्दा (तीक्ष्ण स्वर में) आर्य भूमि और मालवगण को कलंकित करने वाले कापालिको ! इस पिशाच कार्य को छोड़ो । किसी भी शास्त्र में इसके लिये समर्थन नहीं है । मुक्त करो इसको । जैन सन्यासी है ।

कालकाचार्य—तुम लोगों को कीर्तों मकड़ों की योनियों में जन्म लेकर दारुण यातनायें सहनी पड़ेंगी । इस कुकर्म से विरत हो और ज्ञान के दीप से आगे का पन्थ परखो ।

(घबराये हुये कापालिक स्थिर हो जाते हैं)

एक कापालिक—हमको तुमसे किसी भाव भी बुद्धि मोल लेने की अटक नहीं है । हटो यहाँ से । यह हाट या चौक नहीं है जहाँ हम अपने हाथ की खुजली तुम्हारे घुटे खोपड़े पर न मिटा सकें । भागो नहीं तो तुम्हारा भी बलिदान किया जायगा ।

सुनन्दा—(विनीत स्वर में) कापालिक, यह जो एक निस्सहाय और विवश प्राणी नीचे बँधा पड़ा है यह तुम्हारे सदृश ही देहधारी मनुष्य है । यदि तुम किसी भी शास्त्र में मनुष्य के बलिदान का समर्थन बतला दो तो इसके स्थान पर मैं आने को तैयार हूँ । मुझको बांधने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी । मेरी देह को चाहे खंड खंड करके होम देना, अथवा समूचा ही । तुम्हारा देवता यदि नर-बलि चाहता है तो उसको मेरे मांस से संतुष्ट हो जाना चाहिये ।

(कालकाचार्य का हाथ सहसा अपनी कमर पर जाता है, मानो खड्ग निकालना चाहता हो, परन्तु उसके पास कोई हथियार नहीं है)

कालकाचार्य—(दांत पीसकर) ओह ! (फिर संयत होकर एक क्षण उपरान्त) कापालिको, तुम्हारी समझ में यदि यह ऊँचा सिद्धान्त न समा पा रहा हो तो मैं तुम्हारे आचार्य पुरन्दर से बात करूँगा । कहां हैं वे ? मैं उनको शास्त्रार्थ में परास्त करके रहूँगा ।

एक कापालिक—हुं, आचार्य पुरन्दर से बात करेगा ! आचार्य यहाँ इससे शास्त्रार्थ करने आयेंगे !! यह उनको हरायेगा !!! वे नगर में हैं । जा वहाँ भी कुछ कापालिक तेरा सिर फोड़ने को मिल जायेंगे ।

कालकाचार्य—मूर्खों, राक्षसों, हमारे जीते जी तुम्हारा यह कुकृत्य सफल न हो सकेगा ।

(कापालिक वध की इच्छा से कालकाचार्य को घेरते हैं । तब तक सुनन्दा वकुल के मुँह से कपड़े की ठूँस निकाल फेकती है । वकुल चिल्लाता है—‘दौड़ियो, बचाइयो ।’ कुछ कापालिक सुनन्दा पर भपटते हैं)

सुनन्दा—मैं सुखी हूँ कापालिको, मुझको मार डालो । वकुल तुम मुक्त हो !

(परन्तु कालकाचार्य या सुनन्दा पर शस्त्र उठाने का उनको साहस नहीं होता ! वे एक स्थान पर एकत्र होकर संकेतों में कुछ परामर्श करते हैं । वकुल निरन्तर चिल्लाता है)

कालकाचार्य—मारो हमको कापालिको । हाथ क्यों रुक गया ।

एक कापालिक—बलिदान के लिये लाया गया पशु या नर यदि ऐसे समय पर बोल उठे तो वह एक घड़ी के लिये अव्यय हो जाता है । इसलिये हम इसको यथेष्ट चिल्लाने दे रहे हैं ।

कालकाचार्य—तुम्हारी अपेक्षा तो घन में भ्रमण करने वाली जातियाँ अच्छी, क्योंकि वे ऐसे पशु या नर को जो वध के समय बोल उठे फिर मारते ही नहीं ।

(वकुल बन्धन तोड़ने की चेष्टा करता है, परन्तु इतना जकड़ा हुआ है कि तोड़ नहीं सकता । वह निरन्तर चिल्लाता रहता है । कालकाचार्य और

सुनन्दा उसके बचाने के लिये आतुर हैं, परन्तु अपने को असमर्थ पाते हैं)

एक कापालिक—उपदेश की आड़ में तुम जङ्गली जातियों को निन्दा मत करो । वे सब भैरव की पूजा करते हैं और हमारी पट्टी में हैं । पकड़ो कापालिको इस मुँह चले को और इस छोकरी को । इनका भी बलिदान किया जायगा ।

सुनन्दा—(पीछे हटकर) मुझको मत छूना । तुम अपना मन्त्र पट्टी में आग में कूदने को प्रस्तुत हूँ । परन्तु इन दोनों को जाने दो । तुम्हारे और जङ्गली जातियों के भैरव क्या मुझ अकेली के रक्त मांस से संतुष्ट न हो जायेंगे ?

(कापालिक उन दोनों को पकड़कर बाध लेते हैं । उसी समय वकुल की पुकार सुनकर कुछ सैनिक और चाट द्रांगिक आ जाते हैं)

द्रांगिक—यह सब क्या है ? कौन निह्ला रहा है ? किसको पकड़ लिया गया है ।

वकुल—मुझको मार डालने के लिये दुष्ट कापालिक पकड़ लाये ! ये दोनों साथ मुझको बचाने के लिये आ गये तो इनको भी बाँधने का प्रयास कर रहे हैं !! मुझको तो इतना कस दिया है कि मेरा अङ्ग अङ्ग फूटा जा रहा है !!! ओह !!!!

(शब्द की तुमुलता पर इधर उधर से अनेक कापालिक एकत्र हो जाते हैं)

एक कापालिक—हम को विधि पूर्वक अपना कार्य करने की स्वतन्त्रता है । कोड़े नहीं रोक सकता ।

द्रांगिक—उज्जैन नगरी के इतने निकट ! महाकाल के मन्दिर के पङ्चोस में !! मुक्त करो इनको !

अनेक कापालिक एक साथ—असम्भव ।

द्रांगिक—आप लोगों को विदित होना चाहिये कि नगरों और ग्रामों में तथा उनके पङ्चोस में बलिदान बन्द कर दिये गये हैं ।

कापालिक—आप क्या जैन या बौद्ध हो, द्रांगिक हम लोग दिन में तो बलिदान नहीं करते। यह रात है, क्या तुमको दिखलाई नहीं पड़ रहा है।

द्रांगिक—रात में भी नहीं कर सकोगे ! यह उज्जैन है !! मनुष्यों का बलिदान !!! कभी नहीं। छोड़ दो इन लोगों को।

वकुल—अरे मेरे रस्से को तो खोल दो। खाल कट गई। रक्त बह रहा है।

द्रांगिक—(वकुल को पास से देखकर और उसके सौन्दर्य से और भी अधिक पसीज कर) तुम लोग कितने निठुर हो। भगवान् जङ्घर ने सुन्दर प्रतिमार्थें क्या नष्ट करने के लिये बनाई हैं ?

एक कापालिक—शंव होकर तुम ऐसा कहते हो ! डूब मरो त्रिप्रा की धार में !!

द्रांगिक—शंव हूं, परन्तु कापालिक नहीं हूं। सचेत सैनिकों, काटो बन्धन—मुक्त करो इन दोनों को।

सब कापालिक—असम्भव। ये हमारे बन्दी हैं।

(कुछ और कापालिक आ जाते हैं)

द्रांगिक—तुम सब लोग राजा के पास चलो।

एक कापालिक—हम अपने आचार्य के अतिरिक्त और किसी को राजा नहीं मानते। जिस किर्मा को आना हो यहीं आवे।

द्रांगिक—दो सैनिक इसी क्षण राजा के पास जाओ। कहना, द्रांगिक मेले में आये हुये लोगों की रखवाली के सम्बन्ध में घूमता हुआ त्रिप्रा के तट पर पहुंचा तो वह कोलाहल सुनकर तुम लोगों के साथ दौड़ आया और इन तीन भिक्षुओं को इन क्रुद्ध कापालिकों से घिरा दृष्टा पाया, जो बलिदान के नाम पर इनका बध कर डालना चाहते हैं। शीघ्र जाओ।

सैनिक—जिस समय हम लोगों ने कोलाहल सुना एक चाट द्वारा राजा को सूचना उसी समय भेज दी थी। आपको स्मरण होगा।

द्रांगिक—तो भी जाओ । बिलम्ब मत करो ।

(दो सैनिकों का प्रस्थान । कापालिक उन तीनों को ले जाने के लिये खींचा तानी करते हैं । दूसरी ओर से गर्दभिल्ल का कुछ सैनिकों के साथ प्रवेश । साथ में जलती हुई मशालें)

गर्दभिल्ल—क्या बात है द्रांगिक ? ये इतने कापालिक यहाँ क्यों इकट्ठे हैं ? अरे, और ये सन्यासी ! धारा के अतिथि !!

सब कापालिक—धारा के ! उत्तम भद्र !! हमारे चिर शत्रु !!! तब तो ये बलिदान के लिये और भी अधिक उपयुक्त हैं ।

गर्दभिल्ल—ये सम्भवित जैन हैं । इनको जाने दो ।

(पुरन्दर का प्रवेश । पुरन्दर स्वस्थ छूरे शरीर का मनुष्य)

सब कापालिक—आचार्य की जय हो ।

(गर्दभिल्ल नमस्कार करता है)

पुरन्दर—क्या है राजन्य ? मैंने अभी अभी समाधि खोली और कोलाहल सुन कर चला आया ।

एक कापालिक—ये तीनों हमारे वन्दी हैं । द्रांगिक व्यर्थ ही हमारी भर्त्सना कर रहा है ।

गर्दभिल्ल—ये तीनों बौद्ध या जैन सन्यासी हैं । उज्जैन में अवध्य हैं । इनकी स्वतन्त्रता भी अवाध्य है ।

एक कापालिक—परन्तु ये उत्तम भद्र हैं और हमारे वन्दी हैं ।

गर्दभिल्ल—यहाँ विधान मालव गण का है न कि कापालिकों का !

पुरन्दर—परन्तु उत्तम भद्र हम सबके परम शत्रु हैं । इसलिये जिस किसी के हाथ पड़ जायं उसी के वन्दी हैं । राजन्य, आपने देखा नहीं उन्होंने हमारे योग कार्य में कितनी बाधा डाली थी ?

कालकाचार्य—सन्ध्या समय हमने जो कुछ किया था वह धर्म कार्य था । इस समय हम कापालिकों को अधर्म करने से रोकने को आ पहुँचे । हम जो कुछ कर रहे हैं वह धर्म है । तुम लोग जो कुछ कर रहे हो वह

अधर्म और अनोति है, दुराचार है। सबके सब नरक जाओगे और नरक की यातनायें सहोगे।

पुरन्दर—हमारे युद्ध देवता कार्तिकेय का रण वाहन मयूर तुम सरीखे तुच्छ कृमि कीट और सर्पों को यों ही खुग जाता है। तुम लोग हमारे वन्दी हो। बक बक की तो जीवित काट कर फेक दूँगा।

द्रांगिक—आचार्य, आपके कापालिक इन तीनों को बलिदान के लिये पकड़े हुये हैं। इनका बलिदान नहीं हो सकता।

गर्दभिल्ल—बलिदान नहीं हो सकता। और न इनको किसी भी प्रकार का त्रास ही दिया जा सकता है। यह सब हमारे गण के नियमों के प्रतिकूल है।

पुरन्दर—(सोचकर) कुछ भी हो ये वन्दी रहेंगे। इनका बध भी न हो, परन्तु वन्दी अवश्य आजन्म रहेंगे। इन्होंने हमारे यज्ञकार्य को विध्वंस करने में कोई कसर नहीं लगाई। ये हमारे वन्दी निःसन्देह रहेंगे।

सब कापालिक—ऐसा ही होगा। ऐसा ही होगा। हम इनको ले जायेंगे।

गर्दभिल्ल—अच्छा ये वन्दी रहेंगे, परन्तु उज्जैन के मालवगण के।

सुनन्दा—हमारा अपराध ?

वकुल—हमारा अपराध ?

कालकाचार्य—हमने किया क्या है ?

वकुल—हम तो मेले में भिछाटन करते हुये पहुँचे थे, हमने तो कोई भी अपराध नहीं किया।

पुरन्दर—निकले थे भिछाटन को और डालने लगे यज्ञों में विघ्न !

गर्दभिल्ल—क्या किया है, इसका न्याय पीछे होगा। इस समय इस विषय पर तर्क भी नहीं किया जायगा।

पुरन्दर—(दलकर) हम लोग इस पर सहमत हैं कि ये तीनों आपके वन्दी रहें, परन्तु स्पष्ट वचन दीजिये कि आप इनको मुक्त नहीं कर देंगे।

सब कापालिक—वचन दीजिये । शपथ लीजिये ।

गर्दभिल्ल—मैं वचन देता हूँ ।

पुरन्दर—अच्छा तो ये तीनों अब आपके बन्दी हुये । कापालिको खलो अपने आश्रम को ।

(नेपथ्य की आग बुझ जाती है)

एक कापालिक—परन्तु ये भागने न पावें ।

गर्दभिल्ल—विश्वास रखिये ।

पुरन्दर—और इनका न्याय इस अपराध के सम्बन्ध में होगा, कि ये उत्तम भद्र हैं जो श्रावक रूप में हमारा मख विनाश करने के लिये उज्जैन आये हैं, कपटी और धूर्त हैं ।

कालकाचार्य—हम तुम सबको प्रबोध देने के लिये आये हैं । यदि यही हमारा अपराध है तो हम तीनों स्वीकार करते हैं ! न्याय के छद्म की कोई आवश्यकता नहीं । करो हमारा वध, अधर्मियो ! पिशाचो !!

पुरन्दर—(दांत पीसकर) राजन्य, इन लोगों को अपना अपराध स्वीकार है । अनुसन्धान की आवश्यकता नहीं है । अब इनको दण्ड दो । कम से कम जीभ तो इनको काट ही डाली जानी चाहिये ।

गर्दभिल्ल—मैं अकेला दण्ड नहीं दे सकता । उज्जैन के प्रमुख जन समिति में बैठेंगे । वे ही निर्धार करेंगे । ये अब हमारे बन्दी हैं । दण्ड के निश्चय होने तक ये लोग अब मेरे अधिकार में रहेंगे ।

पुरन्दर—मालवगण में हमारा भी कुछ स्थान है ।

गर्दभिल्ल—तब समिति में बैठकर निर्णय करिये । आप स्वयं आरोपी न्यायाधीश और दायिद्वक—सब एक साथ,—नहीं बन सकते । आपको शोभा नहीं देगा !

पुरन्दर—उज्जैन निवासी यदि हम लोगों के अशूल और कुठार द्वारा अपने शत्रुओं से रक्षा चाहते हैं तो उनको हमारा निर्णय मानना चाहिये !

गर्दभिल्ल—(क्षुब्ध स्वर में) क्या है आपका निर्णय आचार्य ?
न्याय की सापेक्षता का नहीं, न्याय की उपेक्षा का निर्णय ?

(सुनन्दा आशान्वित होती है । वकुल उत्कण्ठित और कालकाचार्य उद्विग्न है)

पुरन्दर—(एक क्षण सोचकर) यही कि हम इनके लिये वध का दण्ड तो कुछ कठोर समझते हैं, परन्तु आजन्म कारावास उपयुक्त रहेगा ।

गर्दभिल्ल—(टले हुये स्वर में) उज्जैन निवासी जैसा उचित समझें ।

पुरन्दर—और आप स्वयं ?

गर्दभिल्ल—(सोचकर, फिर सुनन्दा की ओर देखते हुये) मैं उचित और अनुचित की स्पर्धा में व्यस्त हूँ ।

कालकाचार्य—मैं वन्दी होना स्वीकार नहीं करता ।

कापालिक—हुं !

गर्दभिल्ल—ले चलो द्रागिक इन लोगों को । ये तीनों मेरे भवन में पृथक पृथक वन्दी होंगे ।

पुरन्दर—आपके भवन में ! साधारण कारावास में क्यों नहीं ?

गर्दभिल्ल—क्योंकि ये राजकुल के लोग हैं । क्योंकि यह जैन सन्यासी हैं ।

पुरन्दर—हां ! राजकुल !! राजकुल !!! अस्तु । कहीं भी बन्द करो, परन्तु इस रोग को बाहर मत निकलने देना । और, न फैलने ही देना । नहीं तो—नहीं तो—हम अपने मयूर को प्रमत्त कर सकते हैं, यह स्मरण रहे । आओ कापालिको मेरे साथ ।

(कापालिक पुरन्दर के साथ जाते हैं)

एक कापालिक —(उन तीनों की ओर देखता हुआ) हमारा मयूर आज मत्त होते होते रह गया ।

गर्दभिल्ल—(कापालिकों के चले जाने पर) उस मुनि के बन्धन खोलो द्रांगिक ।

(द्रांगिक वकुल की रस्ती खोल देता है)

गर्दभिल्ल—द्रांगिक, अब इन तीनों को मेरे भवन में सम्मानपूर्वक वन्दो करदो । भोजन और शयनादि का भी उचित प्रबन्ध कर देना । तीनों पृथक पृथक रखे जायंगे ।

सुनन्दा—वन्दीगृह !

कालकाचार्य—स्वच्छ पवन को आरुद्ध ।

सुनन्दा—दूसरों की रक्षा के निमित्त जलते हुये कुण्ड में फेका जाना, भूखे गोधों को अपनी देह के मांसपिण्ड दे देना, चींटियों की प्यास को अपने रक्त से बुझाना वन्दीगृह में अलग अलग रहने से अधिक अच्छा है ।

गर्दभिल्ल—अलग अलग ही रहना होगा, परन्तु आप लोगों को किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं हो पायगा । यह व्यथा थोड़े ही समय की है देवो । मैं विवश हूँ ।

(वह सुनन्दा को आधे क्षण अर्थ भरी दृष्टि से देखता है । सुनन्दा दूसरी ओर मुँह फेर लेती है)

वकुल—हमारा न्याय कब तक होगा राजन्य ?

कालकाचार्य—न्याय ! बधिकों से न्याय की आशा !!

गर्दभिल्ल—शीघ्र होगा । मैं सहायता करूँगा ।

(वे सब जाते हैं । सुनन्दा मुँह फेरते ही देखती है कि गर्दभिल्ल उसकी ओर दृष्टि किये हुये चल रहा है)

सुनन्दा—(गर्दभिल्ल के चेहरे का निरीक्षण सा करने के उपरान्त ऊपर की ओर आँख उठाकर) हे भगवान् !

(सब का प्रस्थान)

चौथा दृश्य

[स्थान—उज्जैन । गर्दभिल्ल का भवन । एक कक्ष में सुनन्दा है, दूसरे में कालकाचार्य और तीसरे में वकुल । उनके कक्ष में बड़े हैं और उनमें गोखे हैं । विश्राम के लिये चौकियाँ, मञ्च और पर्यङ्क हैं । बिछाई रङ्ग-बिरंगे पत्थरों से जड़ी हुई और स्वच्छ । दीवारों पर महादेव, पार्वती, एक मुखी और पञ्चमुखी शिव तथा अर्द्ध नारीश्वर के चित्र हैं । कुछ चित्र जङ्गली पशुओं के आखेट सम्बन्धी हैं । कुछ चित्र यज्ञों, मखशालाओं और युद्ध विषयक हैं । एक ओर बौद्ध और जैन प्रसङ्गों के भी चित्र हैं । तीनों वन्दी ऐसे कक्षों में हैं जहाँ से न वे एक दूसरे को देख सकते हैं और न कोई बात कर सकते हैं]

सुनन्दा—जी चाहता है कोई भजन गाऊँ, परन्तु अच्छा नहीं लगता—अपने ही स्वर कान को खाने से लगते हैं । राजा जब बात करते हैं तब मन चाहता है कि अधिक न उठें । शैव होने पर भी उनके हृदय में कुछ अनुकम्पा है । वे सच्चे धर्म में दाक्षित किये जा सकते हैं ।

(गर्दभिल्ल का प्रवेश । परस्पर अभिवादन)

गर्दभिल्ल—(विनम्र स्वर में) आप किससे बात कर रही थीं राजकुमारी ?

सुनन्दा—यहाँ मेरे प्रतिविम्ब के सिवाय और कौन है ?

गर्दभिल्ल—आपके आलोक से यह भवन जगमगाता रहता है आपके गायन और बोलों से इस भवन में मधुर मधु भर जाता है । इस भवन की जिन वस्तुओं को आप छू भर देती हैं उनको भाषा मिल जाती है—

सुनन्दा—(मन की उठती हुई गुदगुदी को नियन्त्रित करती हुई) यदि मैं कुरूप होती तो ?

गर्दभिल्ल—तो आपके मधुर कंठ और कठोर तप पर उसका क्या प्रभाव पड़ता ?

सुनन्दा—तो भी आप इसी प्रकार बात करते ?

गर्दभिल्ल—रूप और चरित्र के सामने कौन नहीं झुकता ?

सुनन्दा—(शिथिल स्वर में) मैं वन्दिनी हूँ राजमय ।

गर्दभिल्ल—मैं आपको इसी पल स्वतन्त्र किये देता हूँ, राजकुमारी उज्जैन की जनता फिर भले ही इसके बदले में मेरे टुकड़े टुकड़े कर डाले ।

सुनन्दा—(सहसा) हूँ ! क्या ? (वह टहलने लगती है)

गर्दभिल्ल—राजकुमारी, आप इस कच में परतन्त्र होती हुई भी स्वतन्त्र हैं और मैं स्वतन्त्र होते हुये भी बन्दी हूँ । हम लोग अपनी परिस्थिति को एक दूसरे परिवर्तित कर लें तो कैसा हो ।

सुनन्दा—(स्थिर होकर) मैं समझी नहीं ।

गर्दभिल्ल—यदि मैं अपने हृदय के कारागार में आपको बन्द कर लूँ तो ? (दृढ़ता के साथ उसकी ओर देखता है ।)

सुनन्दा—इससे आपकी स्वतन्त्रता में कौनसी बाधा पड़ेगी ?

गर्दभिल्ल—यदि मुझे आप किसी वैसे ही स्थान में बन्दी कर दें तो मुझको सुख ही सुख मिलेगा ।

सुनन्दा—मुझको चाहे दुःख हो । मेरी स्थिति से आप सुखी नहीं हैं ?

गर्दभिल्ल—मैं सौगन्ध खाता हूँ राजकुमारी, मैं दुखी हूँ । हृदय के कारागार की निविड़ता तभी मधुर होती है जब दो व्यक्ति एक दूसरे के वंदी हों ।

सुनन्दा—मैं श्राविका हूँ । स्वतन्त्रता का सन्देश दे सकती हूँ न तो मैं स्वयं ही परतन्त्र हूँ और न दूसरों की दासता की बेड़ियाँ पहना-सकती हूँ ।

गर्दभिल्ल—मैं आपका प्रदान किया हुआ कोई भी सन्देश ग्रहण कर सकता हूँ ।

सुनन्दा—आप भगवान की आज्ञा के अनुगामी होने को तत्पर हैं ? आप अहिंसा व्रत का पालन करें ।

गर्दभिल्ल—कोयल की कूक, लालमुनैयों की तान और शुक-सारिकाओं की कहानियाँ प्राण सा देती हैं। फूलों की निःशब्द भाषा और सौरभ का अनाहत नाद मेरे हृदय के परकोटे हैं। मुझको जिस मत में यह सब मिल जाय वही मुझको स्वीकृत है।

सुनन्दा—इस परकोटे में कितने जीव जन्तु अभी तक बन्दी किये जा चुके हैं राजन्य ?

गर्दभिल्ल—केवल एक—जो मेरी रानी है। अपने यहां दूसरी के लिये कोई निषेध है भी नहीं।

सुनन्दा—आप पशुओं की तरह सच्चे हैं, मैं प्रसन्न हूं। पशुओं पर मुझको दया है।

गर्दभिल्ल—तो पशु समझ कर मुझ पर दया करती रहिये, और स्नेह भी।

सुनन्दा—तब आपको ज्ञान-मार्ग के अपनाने में कौन सी बाधा दिखलाई पड़ती है ?

गर्दभिल्ल—मैं शैव हूं। अधिकांश उज्जैन निवासी और मालवगण शैव हैं। मैं उनका राजन्य—सेनापति—हूं। मेरे खड्ग और धनुषबाण मयूरगामी की पूजा करते हैं। अहिंसाव्रती होने पर मैं क्या रह जाऊंगा ?

सुनन्दा—अर्थात् आप सब कापालिक हैं। इसलिये स्पष्ट न कहते हुये भी आपका संकेत है कि हमारे मत के नहीं हो सकते।

गर्दभिल्ल—मैं कापालिक नहीं हूं। आप इस बात को जानती हैं। यदि मैं बौद्ध या जैन हो जाऊँ तो आप अपने हृदय की बन्दीगृह मुझको दे सकेंगी ?

सुनन्दा—आपको मैं भगवान की अखण्ड मुक्ति दे सकूंगी। आप सन्यासी बन कर जो राज्य स्थापित करेंगे उसमें किसी प्रकार के भी कारागार को रखने की आवश्यकता न रहेगी।

गर्दभिल्ल—शक पुलिन्दों की बाढ़ पर बाढ़ आ रही है। उन्होंने सिन्धुमौवीर, पञ्चनद, काश्मीर, सुराष्ट्र और लाट मथुरा और पद्मावती

पर अधिकार कर लिया है। अब वे मालव, यौधेय, आरक इत्यादि गणों को प्रसन्ना चाहते हैं। जहाँ जैसा लाभ दिखलाई पड़ता है वैसे ही वे जैन या बौद्ध मत में ढलने का ढोंग रच लेते हैं, परन्तु वे असीम जन-पीड़न करते हैं और वर्ण संस्कारता बढ़ाते हैं। बिना धनुषबाण के इनका विरोध कैसे किया जा सकेगा देवी ?

सुनन्दा—विरोध करने की बात ही क्या रहेगी ? सब मिलकर प्रज्ञा का प्रकाश फैलायेंगे ! देव-प्रिय चन्द्रगुप्त मौर्य ने जो किया था, फिर हो सकता है।

गर्दभिल्ल—चन्द्रगुप्त मौर्य आर्य थे। ये अनार्य हैं। जैन और बौद्ध हो जाने पर भी ये लोग हत्या, हिंसा और रक्तपात को नहीं छोड़ते। उनके साथ हमारा अनुराग हो सकता है ?

सुनन्दा—ज्ञानी होने पर आप इस समस्या पर विचार कर सकते हैं।

गर्दभिल्ल—मैं मत-परिवर्तन के लिये प्रस्तुत हूँ। परन्तु आपको सन्यासियों का मठ छोड़ कर राजा के भवन को अपना आश्रम बनाना पड़ेगा। अपने मुँहको सच्चे पशु की उपाधि पहले ही दे दी है। (हँसता है।)

सुनन्दा—(दृढ़ता के साथ) मैं मठों और सन्यासियों की संख्या बढ़ाने के लिये घर से निकली हूँ न कि कम करने के लिये।

गर्दभिल्ल—यदि मैं अपने प्राणों की होड़ लगा कर आपको इस पत्थर-ढेंट वाले वन्दीगृह से मुक्त करदूँ तो आप क्या इस भवन में स्वतंत्र विचरण करती हुई, प्रभा को नहीं बिखेर सकेंगी ? मैं आपका शिष्य और जीवन सहचर हो जाऊँगा।

सुनन्दा—आपके मालव कापालिक तमिस्रा को छोड़ कर ज्ञान के आलोक में आने को सहमत हो जायेंगे ?

गर्दभिल्ल—सब तो नहीं, परन्तु अनेक ऐसा करेंगे। किन्तु एक प्रार्थना है—अभी प्रकट रूप से ऐसा नहीं हो सकेगा। मैं गुप्त रूप से मत परिवर्तितकर लूँगा। जब उपयुक्त अवसर आयगा, तब प्रकट हो जाऊँगा।

(सुनन्दा के होठों पर व्यङ्ग की मुस्कान आती है ।)

सुनन्दा—ज्ञान की भी चोरी ! सूर्य की किरणों को भी मुट्ठी के भीतर बन्द कर रखने का साहस ! तान को तार के ही भीतर गुप्त रखने का प्रयत्न !! विद्युत् को मेघ से प्रच्छन्न रखने का प्रयास !!! मैं इसको नहीं सह सकती । यह प्रवञ्चना है । ठुल है ।

गर्दभिल्ल—पशुओं पर दया करने वालों को क्या मनुष्यों पर दया नहीं करनी चाहिये ? सोचिये, मालवगण मुझको व्यर्थ करके छोड़ेंगे । मैं वैसा राजा नहीं हूँ, जैसे शकों में या किसी किसी आर्य जनपद में हैं । वे लोग मनमानी कर सकते हैं, मैं नहीं कर सकता । गण की जनता मुझको अपने रोष के प्रवाह में धकेल देगी ।

सुनन्दा—(एक क्षण उपरान्त) आप मेरे प्रण को समझने का प्रयत्न कीजिये ।

गर्दभिल्ल—(भ्रमपूर्ण आशा से पुलकित होकर) उज्जैन की समिति ने आप लोगों को दीर्घ समय तक बन्दी रखने का निर्णय किया है । मैं ऐसा उपाय करता हूँ जिससे आचार्य कालक और वह यवन भिन्न—वकुल—तुरन्त बाहर हो जायें ।

सुनन्दा—और मैं ?

गर्दभिल्ल—आपको सोचने के उपरान्त कुछ कहना है न ? मैं अब उन दोनों के पास जाता हूँ ।

(सुनन्दा चिन्ता में है । गर्दभिल्ल का शीघ्रता पूर्वक प्रस्थान । सुनन्दा वाले कक्ष का द्वार बन्द हो जाता है । भवन के दूसरी ओर कालक और वकुल के कक्ष हैं । उस कक्ष के सामने गर्दभिल्ल का दूसरी ओर से प्रवेश । वह इस कक्ष का द्वार खोलता है)

गर्दभिल्ल—आचार्य तथा यवन युवक, मैं यहां आया हूँ । आप आंगन में आजायें ।

(कालकाचार्य और वकुल अपने अपने कक्षों से बाहर आते हैं)

कालकाचार्य—आपके प्रमुखों ने तथा आपने हमारे लिये क्या निर्याय किया है ?

गर्दभिल्ल—आप लोगों के लिये दीर्घ कारावास की आज्ञा दी है ।

वकुल—दीर्घ कारावास ! हे भगवान । अन्धेर है ! अत्याचार है !! इन मुखियों को इतना समझाया बुझाया, परन्तु उनका विवेक जाग्रत न हुआ !

गर्दभिल्ल—सुनिये, सुनिये मैं अभी राजकुमारी को एक आश्वासन देकर आया हूँ ।

कालकाचार्य—कौन राजकुमारी ?

वकुल—सुनन्दा न ? क्या आश्वासन दे आये हैं आप ?

कालकाचार्य—वह राजकुमारी नहीं है, केवल श्राविका है ।

गर्दभिल्ल—मैं राजकुमारी को आश्वासन दे आया हूँ कि आप लोगों के निकल भागने की सुविधा कर दूँगा । वे यहीं रहेंगी क्योंकि शीघ्र मेरी पटरानी होने वाली हैं ।

कालकाचार्य—असंभव ! अत्याचारी ! नीच !! अधम !! नर्क के कीड़े !!!!

वकुल—आचार्य, शान्ति से काम लीजिये । राजन्य, वह कौनसी सुविधा है ?

गर्दभिल्ल—आचार्य तो रुष्ट हो गये हैं । यों ही व्यर्थ ।

कालकाचार्य—पापिष्ठ, प्रमुख सुनन्दा को मुक्त करने के पक्ष में थे और हम दोनों को वन्दीगृह में डाल रहने के; परन्तु तूने विरोध किया—

गर्दभिल्ल—मैंने तो हित की ही कामना की थी । सुनन्दा अकेली को छोड़ देने से फिर बह कहाँ जाती ?

कालकाचार्य—धूर्त ! नीच !! चाण्डाल !!!

वकुल—मुझसे बात करिये । वे इस समय आपे में नहीं हैं ।

कालकाचार्य—चुप मूख, गर्दभिल्ल, मैं सुनन्दा से बात करन चाहता हूँ ।

वकुल—ठहरिये—

गर्दभिल्ल—राजकुमारी से बात नहीं हो सकेगी ।

वकुल—वह सुविधा है क्या है ? उस सुविधा को बात स्पष्ट कीजिये ।

गर्दभिल्ल—मैं पहरा शिथिल किये देता हूँ । कौशेय की डोर देता हूँ उसके सहारे निकल भागिये । मैं समिति के निर्णय से सहमत नहीं था, इसलिये आप लोगों को यह सुगम योजना देता हूँ ।

कालकाचार्य—मेरी बहिन—उस श्राविका का क्या होगा ? वह अल्प वयस्क है । (रुद्ध कण्ठ से) हे भगवान ।

गर्दभिल्ल—वह सुखपूर्वक मेरे सहवास में इसी भवन में रहेगी । आप सुचित हों आचार्य ।

कालकाचार्य—तुम्हारे सहवास में ! पिशाच ।

वकुल—ठहरिये आचार्य । हमको यह योजना स्वीकार है ।

(कालकाचार्य चुप है)

गर्दभिल्ल—मैं अभी डोरी लाता हूँ ।

(गर्दभिल्ल का प्रस्थान)

वकुल—इतने चतुर होकर आचार्य ऐसी असावधानी ! हम लोग निकल तो चलें फिर सुनन्दा की निष्कृति का उपाय शीघ्र कर लेंगे ।

(कालकाचार्य चुप) देखिये, अपनी सहायता के लिये सम्पूर्ण उत्तम भद्र हाथ में बज्र को पकड़ेंगे । मथुरा और पञ्चावती के शक महान्त्रप सिन्धुसौवीर के शाहानुशाह और सुराष्ट्र के लत्रप शक तथा यवन, मालवों पर टूट पड़ेंगे । उत्तमभद्रों का जैन और बौद्ध मत तथा सुनन्दा का—इन सबका—एक साथ ही उद्धार होगा ।

कालकाचार्य—(धीमे गिरे हुये स्वर में) मुझको इस समय कुछ नहीं दिखलाई पड़ रहा है वकुल । मेरी बहिन कापालिक गर्दभिल्ल के हाथ में ! उसकी दासी होकर !! हा हन्त !!! (सिर पीटता है ।)

कालकाचार्य—आपके प्रमुखों ने तथा आपने हमारे लिये क्या निर्णय किया है ?

गर्दभिल्ल—आप लोगों के लिये दीर्घ कारावास की आज्ञा दी है ।

वकुल—दीर्घ कारावास ! हे भगवान । अन्धेर है ! अत्याचार है !! इन सुखियों को इतना समझाया बुझाया, परन्तु उनका विवेक जाग्रत न हुआ !

गर्दभिल्ल—सुनिये, सुनिये मैं अभी राजकुमारी को एक आश्वासन देकर आया हूँ ।

कालकाचार्य—कौन राजकुमारी ?

वकुल—सुनन्दा न ? क्या आश्वासन दे आये हैं आप ?

कालकाचार्य—वह राजकुमारी नहीं है, केवल श्राविका है ।

गर्दभिल्ल—मैं राजकुमारी को आश्वासन दे आया हूँ कि आप लोगों के निकल भागने की सुविधा कर दूँगा । वे यहीं रहेंगी क्योंकि शीघ्र मेरी पटरानी होने वाली हैं ।

कालकाचार्य—असंभव ! अत्याचारी ! नीच !! अधम !! नक के कीड़े !!!!

वकुल—आचार्य, शान्ति से काम लीजिये । राजन्य, वह कौनसी सुविधा है ?

गर्दभिल्ल—आचार्य तो रुष्ट हो गये हैं । यों ही व्यर्थ ।

कालकाचार्य—पापिष्ठ, प्रमुख सुनन्दा को मुक्त करने के पक्ष में थे और हम दोनों को वन्दीगृह में डाल रहने के; परन्तु तूने विरोध किया—

गर्दभिल्ल—मैंने तो हित की ही कामना की थी । सुनन्दा अकेली को छोड़ देने से फिर बह कहाँ जाती ?

कालकाचार्य—धूर्त ! नीच !! चाण्डाल !!!

वकुल—मुझसे बात करिये । वे इस समय आपके में नहीं हैं ।

कालकाचार्य—चुप मुख, गर्दभिल्ल, मैं सुनन्दा से बात करना चाहता हूँ ।

वकुल—ठहरिये—

गर्दभिल्ल—राजकुमारी से बात नहीं हो सकेगी ।

वकुल—वह सुविधा है क्या है ? उस सुविधा को बात स्पष्ट कीजिये ।

गर्दभिल्ल—मैं पहरा शिथिल किये देता हूँ । कौशेय की डोर देता हूँ उसके सहारे निकल भागिये । मैं समिति के निर्णय से सहमत नहीं था, इसलिये आप लोगों को यह सुगम योजना देता हूँ ।

कालकाचार्य—मेरी बहिन—उस श्राविका का क्या होगा ? वह अल्प वयस्क है । (रुद्ध कण्ठ से) हे भगवान ।

गर्दभिल्ल—वह सुखपूर्वक मेरे सहवास में इसी भवन में रहेगी । आप सुचित हों आचार्य ।

कालकाचार्य—तुम्हारे सहवास में ! पिशाच ।

वकुल—ठहरिये आचार्य । हमको यह योजना स्वीकार है ।

(कालकाचार्य चुप है)

गर्दभिल्ल—मैं अभी डोरी लाता हूँ ।

(गर्दभिल्ल का प्रस्थान)

वकुल—इतने चतुर होकर आचार्य, ऐसी असावधानी ! हम लोग निकल तो चलें फिर सुनन्दा की निष्कृति का उपाय शीघ्र कर लेंगे ।

(कालकाचार्य चुप) देखिये, अपनी सहायता के लिये सम्पूर्ण उत्तम भद्र हाथ में बज्र को पकड़ेंगे । मथुरा और पञ्चावती के शक महान्तत्रप सिन्धुसौवीर के शाहानुशाह और सुराष्ट्र के तत्रप शक तथा यवन, मालवों पर टूट पड़ेंगे । उत्तमभद्रों का जैन और बौद्ध मत तथा सुनन्दा का—इन सबका—एक साथ ही उद्धार होगा ।

कालकाचार्य—(धीमे गिरे हुये स्वर में) मुझको इस समय कुछ नहीं दिखलाई पड़ रहा है वकुल । मेरी बहिन कापालिक गर्दभिल्ल के हाथ में ! उसकी दासी होकर !! हा हन्त !!! (सिर पीटता है ।)

वकुल—आचार्य, आपका महान .मस्तक इस तरह की ताड़ना के लिये नहीं सृजा गया है। वह हमारे श्रद्धों का आगार है। सचेत आचार्य ! वह आ रहा है।

(कालकाचार्य संभल जाता है। गर्दभिल्ल का रेशम की डोरी लिये हुये प्रवेश)

गर्दभिल्ल—मैंने अपना वचन निभाया आचार्य। अब आप क्रोध का शमन करें। आप देख रहे होंगे कि मैं आपकी मित्रता का पात्र हूं।

(कालकाचार्य दांत पीस कर सिर नीचा कर लेता है)

वकुल—निस्सन्देह राजन्य, निस्पन्देह। धन्यवाद। डोरी दीजिये।

गर्दभिल्ल—मैं पहरुओं को पीने के लिये मद्य दे आया हूं। जैसे ही वे सो जायँ आप खिड़की से बाहर हो जाइये। मैं अब जाता हूं। नमस्कार आचार्य।

वकुल—नमस्कार राजन्य, नमस्कार।

गर्दभिल्ल—आचार्य अब भी क्रुद्ध जान पड़ते हैं। उन्होंने कुछ नहीं कहा।

कालकाचार्य—(गर्दन ऊँची करके) जो कुछ भी हो—जैसा कुछ भी हो। अस्तु। (शिथिल स्वर में) नमस्कार। मैं चिन्ता में था, इसलिये आचार को विसर गया। हूं—ऊँ—यह समूचे मालवगण का निर्णय है। हुं।

गर्दभिल्ल—जी। (गर्दभिल्ल शीघ्र ही जाता है)

वकुल—आचार्य, कुछ वस्त्र ले लीजिये, मैं पीठ पर गठरी बाँध लूँगा। तब तक पहरुये सोये जाते हैं। फिर खिड़की से निकल जाने में बाधा नहीं पड़ेगी।

कालकाचार्य—यहां से कहां चलेंगे.?

वकुल—मैंने अभी अभी मन में योजना बनाली है। पहले भद्रावती फिर पद्मावती, मथुरा और उपरान्त उत्तर पश्चिम की ओर। वहां से सिन्धुसौवीर।

कालकाचार्य—मेरी बहिन, उस दीन कन्या का क्या होगा वकुल ?
(दबे हुये स्वर में) हा !

वकुल—मालवों का संहार और सुनन्दा का उद्धार । तैयार हो जाइये । विलम्ब मत करिये । (मुक्ति के दीर्घ उच्छ्वास के साथ सुनन्दा को छोड़ जाने पर निराशा की छोटी सी सांस लेते हुये) बहिन सुनन्दा को शीघ्र छुटकारा मिलेगा । (दांत पीसता है)

(वे दोनों आवश्यक वस्त्रों की गठरी बांधकर एक एक करके खिड़की के बाहर डोरी के सहारे उतरकर अँधेरे में विलीन हो जाते हैं । डोरी खिड़की में बँधी छोड़ देते हैं)

(दूसरे पार्श्व से गर्दभिल का धीमी आहट के साथ प्रवेश)

गर्दभिल—(कक्ष के भीतर जाकर और देखकर) चले गये । अब मैं डोरी को छुटाकर हाथ में करूँ । किसी ने देख लिया तो पता लगा लिया जावेगा कि उद्धार के लिये कौशेय की डोरी का माधन जुटाया गया था । (डोरी की गांठ छोड़कर अपने हाथ में करता है ।)

पांचवां दृश्य

[स्थान गर्दभिल के भवन का एक भाग । समय रात्रि । एक ओर से गर्दभिल आता है । उसके आते ही सुनन्दा का प्रवेश]

सुनन्दा—(कुछ अचम्भे के साथ) आप कहां !! कैसे !!!

गर्दभिल—राजकुमारी, आपको शुभ समाचार देने के लिये आया हूँ । आचार्य कालक और यवन—यवन वकुल उद्धार पा गये । वे अब तक दूर भी निकल गये होंगे ।

सुनन्दा—और मैं यहाँ अकेली रह गई ! राजन्य, मैं भी जाना चाहती हूँ । क्या मेरा उद्धार नहीं कर सकते ? मैं अपनी स्वतन्त्रता चाहती हूँ । मैं अपने भाई के पास पहुँच जाना चाहती हूँ । मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिये ।

गर्दभिल्ल—आप दुखी न हों। वे दोनों न जाने कहाँ जा छिपे होंगे, या, चले जा रहे होंगे। आप उनको खोजने के लिये निकलेंगी तो वे दोनों, आप और मैं भी—चारों के चारों, मारे जायेंगे। क्रुद्ध मालव हमको एक को भी न छोड़ेंगे।

सुनन्दा—तो क्या यहाँ सब कापालिक ही कापालिक हैं ? क्या उज्जैन में कोई बौद्ध अथवा जैन नहीं है।

गर्दभिल्ल—सब कापालिक नहीं हैं। बौद्ध अथवा जैन अनेक हैं, परन्तु अश्वक, पदाति इत्यादि सैनिक शैव हैं, और उनमें भी अधिकांश कापालिक। जो शैव कापालिक नहीं हैं वे कापालिकों के सहायक बन जायेंगे।

सुनन्दा—आप तो राजा हैं, क्या आप उनका दमन नहीं कर सकते ?

गर्दभिल्ल—मैं राजा नहीं हूँ केवल राजन्य हूँ। जता भी चुका हूँ जनमत चाहे सुमार्ग पर हो चाहे कुमार्ग पर, उसको अपनी इच्छा के अनुसार चलाने का साधन और बल मुझको प्राप्त नहीं है। युद्ध हो उठे तो अवश्य अनेक अधिकार अपने आप मेरे हाथ में आ जायेंगे, परन्तु वह दूर की बात है। आप, न तो दुखी हों और न हठ करें। थोड़ा धैर्य धरें। शीघ्र ही आपका और मेरा जीवन उद्भूत होगा।

सुनन्दा—समझ में नहीं आता अब मैं क्या करूँ।

गर्दभिल्ल—आपको सखी-सहेलियाँ मिलेंगी। आप उनके साथ गावें। संसार में जितने सुन्दर पुष्प हैं उनकी नवीन सुकुमारता और सुगन्धि से अपने सौन्दर्य सौरभ की होड़ लगायें। आप अपने अङ्ग अङ्ग को फूलों से सजाकर फूलों को और मुझको कृतार्थ करें।

सुनन्दा—(निर्वल स्वर में) मैं यह भाषा नहीं सुनना चाहती। छोटी बातों को बड़े शब्दों में मत कहिये।

गर्दभिल्ल—मेरे हृदय में और कोई भाषा ही नहीं, परन्तु यदि यह आपको बुरी लगती है तो मैं अपने उस हृदय को मरोड़ कर फेक दूँगा जहां उसका जन्म और निवास है ।

सुनन्दा—(उसकी बात को ठीक ठीक न समझकर) तो क्या आप आत्मघात करेंगे ? इससे बढ़कर और कोई पाप नहीं है । मैं निवारण करूँगा । आपको ऐसा नहीं करने दूँगी ।

गर्दभिल्ल—(उसके न समझने से लाभ उठाता हुआ) मैं अवश्य आत्मघात करूँगा । मुझको पद और अधिकार कुछ नहीं चाहिये । यदि आप अपना प्रेम मुझको दे सकेंगी तो मैं अपने शरीर को ज्ञान के ब्रिये बचा लूँगा । अन्यथा इसके टुकड़े टुकड़े कर डालूँगा ।

सुनन्दा—(भयभीत होकर) आप क्या कह रहे हैं ! प्रेम सदृश क्षुद्र और हीन वस्तु के लिये आत्मघात !

गर्दभिल्ल—प्रेम के लिये तो अपना शरीर क्या, संसार भर को मिटा सकता हूँ !

सुनन्दा—(कुछ समझकर) जो संसार भर को मिटाने की दम भरता है वह न तो मनुष्य के प्रेम को पा सकता है और न देवताओं के प्रेम को । और इस प्रकार का प्रेम कृत्रिम तथा व्यर्थ होता है ।

गर्दभिल्ल—(भौंकर) आवेश में उस प्रकार की बात मेरे मुँह से निकल गई । क्षमा कीजियेगा । (सिर उठाकर) परन्तु आत्मवध के विषय में मेरा निश्चय पक्का है । अडिग है ।

सुनन्दा—(यथार्थता को समझकर) मैं किसी भी प्रवृत्ति में नहीं आ सकती । (तीव्र स्वर में) आप क्या बलात्कार करेंगे ?

गर्दभिल्ल—(घबराकर) एं ! क्या ? आप क्या मुझको ऐसा नीच समझती हैं ? असम्भव । यदि आपका स्वेच्छापूर्वक प्रेम पा गया तो मेरा जीवन सार्थक हो जायगा । यदि न पा सका तो मेरा वह निश्चय

मुझसे सम्बन्ध रखता है। आपको क्या प्रयोजन ? मरने के पूर्व आपकी दया की भीख मांगने नहीं आऊँगा। आप केवल सुन लेंगी कि कभी कोई था, और, अब नहीं रहा।

सुनन्दा—मेरा सिर दुख रहा है, आप जायें।

गर्दभिल्ल—मैं जाता हूँ राजकुमारी। आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपकी अनुमति पाये बिना आगे सामने नहीं आऊँगा; परन्तु बिना आपकी अनुमति के, और आपके जाने बिना, दर्शनों की चोरी अवश्य कभी कभी कर लिया करूँगा। (शीघ्र प्रस्थान)

सुनन्दा—(टहलते हुये) इस दुष्ट नगरी में मेरा कोई भी नहीं है।

छटवां दृश्य

[स्थान—उज्जैन नगर का चौक। चौक से विस्तृत मार्ग नगर के भिन्न भिन्न भागों को गये हैं। मार्गों के दोनों ओर भवन, प्रासाद और श्रृङ्खलायें। एक ओर से कुछ बौद्ध साधुओं और श्वेताम्बर जैनों का प्रवेश। बौद्ध श्रमण सिर घुटाये हैं और नारङ्गी रङ्ग की धोती पहिने हैं। आवार भी उनका उसी रङ्ग का है। श्वेताम्बरों के वस्त्र श्वेत हैं। वे सिर ढके हुये हैं। जिस कपड़े से सिर ढका हुआ है उसी से आँखें, नाक, और होठों के अतिरिक्त मुँह भी ढका है। समय—दिन]

एक श्रमण—उन दोनों को कोई देवता बन्दीगृह में से उठा ले गया। मानो या न मानो।

श्वेताम्बर—हां एक प्रकार से ठीक है। देवता ने बुद्धि दी। बुद्धि ने योजना बनाई। योजना ने हाथ पैर सक्रिय किये। सक्रियता को शक्ति मिली। उस शक्ति ने एक रूप धारण किया। फिर कारागार में से तिरोहित हो जाना एक छोटी सी ही बात तो रह गई।

श्रमण—किसी बात पर फिर विश्वास न करना, केवल तर्क, युक्ति और प्रत्यक्ष प्रमाण के भरोसे वस्तु का निर्धार करना और प्रत्येक अज्ञेय तत्व का अविश्वास करना, बस यही तो तुम लोगों ने सीखा है ।

श्वेताम्बर—नितान्त भ्रमपूर्ण बात कर रहे हो श्रमण । नासमझी के कारण ब्राह्मण जो आक्षेप हमारे ऊपर करते हैं, उसी को उधार लेकर तुमने हमारे ऊपर धोष है । नहीं तो वह कुमारी सुनन्दा, क्यों कारागार में रह गई ? देवता उसको क्यों यहां छोड़ गये ?

श्रमण—किसी दिन देवता उसको भी त्राण देगे । किन्तु मैं सुनता हूँ वह जैन है ।

श्वेताम्बर—हूँ, तर्क की यही प्रणाली सीखी है क्या ?

श्रमण—तुम लोग भी शंकों और कापालिकों के समर्थक हो ?

श्वेताम्बर—हम इनके समर्थक ! झूठ !! राजा जैनों का पीड़क है और ब्राह्मणों का पिटू तथा कापालिकों का साथी । हम उनके समर्थक ! परन्तु, मैं भूलता हूँ, तुम लोग शक पुलिन्दों से भैयाचारा स्थापित किये हो, और हम लोग मालव पहले हैं और अन्य कुछ पीछे, इसलिये चाहे कुछ कह लो । कापालिकों के समर्थक !!

(नेपथ्य में) —‘कापालिकों की निन्दा कौन कर रहा है ?’

(कुछ कापालिकों का प्रवेश । इस समय वे लोग गले में मुण्ड माला नहीं डाले हैं । डण्डे लिये हुये हैं ।)

एक कापालिक—(डंडा तानकर) कापालिकों की निन्दा कौन कर रहा था ? बोलो । तालू के निकट जीभ की जड़ है, और तालू खोपड़े के नीचे के स्थान का नाम है । खोपड़ा चाहे घुटा हो चाहे कपड़े से ढका हो, डण्डे के सम्पर्क में आते ही जीभ को आदेश देता है—भीतर बनी रहो, भीतर बनी रहो ।

श्रमण—देखो जी, बहुत आंखे मत दिखलाओ । हम मारना नहीं जानते तो मरना अवश्य जानते हैं । यह है हमारा सिर, मारो ।

श्वेताम्बर—हम मारने की इच्छा नहीं करते परन्तु हमारे मित्र मारना जानते हैं, और इच्छा की धारा भी किसी विशेष परिस्थिति में उत्पन्न हो सकती है ।

कापालिक—हमारा राजा दुलमुल है, नहीं तो तुम लोगों को कभी का सिन्धुसौवीर की ओर धकिया दिया जाता ।

श्वेताम्बर—और तुम यहाँ, विराम विश्राम के साथ अपना डण्डा घुमाते रहते ! जाओ कापालिक, तुम भी हाट में बैठकर हमारी मनमानी आलोचना करलो । मालवों की यह स्वतन्त्रता सबको एक समान प्राप्त है ।

श्रमण—तुम्हें यदि अपने डण्डे और कुठार से ही वार्ता करनी है तो उत्तर-पूर्व, उत्तर-दक्षिण तथा पश्चिम में उत्तम भद्रों के पास चले जाओ या पश्चिम-उत्तर में सिन्धुसौवीर । आटा दाल के भाव का पता लग जायगा ।

एक कापालिक.—हाँ ! ये हैं तुम्हारे सगे सम्बन्धी !! हमारे त्रिशूल की भाल, कुठार की धार, बाण की नोक और मत्त मयूर की चंचु तुम्हारे इन मित्रों को भूतकाल में मिला देने के लिये चंचल हो रही है ।

(कापालिक की आंखों से क्रोध टपकने लगता है । दांत पीसता है और ठोक-पीट करने की सुविधा की खोज में देखता है कि इधर उधर कहीं कोई सैनिक या चाट तो नहीं है । श्रमण और श्वेताम्बर बच कर निकल जाना चाहते हैं । कापालिक पैतरे बदलते हैं । नेपथ्य में गायन ।)

❀ गीत ❀

(तिलक कामोद)

सब जन मिल हरि नाम पुकारो ।

तन मन प्रतिपल हरि पर वारो ।

माया पर से चित्त विरत कर ।

जोवन की प्रतिपत्ति सँवारो ।

[एक भक्त वैष्णव का नेपथ्य से गाते हुये प्रवेश । वैष्णव हैं । माथे पर रोरी का सीकिया तिलक अंकित है । आवार पीले रंग का ओढ़े है । लम्बे केशों में तैल है, संवारे हुये है । बालों पर श्वेत और लाल फूलों की माला है । भुजा पर केयूर हाथ में वलय गले में स्वर्ण का हार और उँगलियों में मुद्रायें पहिने हैं । इसको देखकर कापालिकों का ध्यान बट जाता है । वे वैष्णव को मुँह विराते हैं । वैष्णव के आने पर श्रमण और श्वेताम्बर चले जाने का प्रयत्न करते हैं । कापालिक बीच में पड़कर रोकना चाहते हैं । वैष्णव उनके पास जाता है ।]

वैष्णव—इन लोगों को क्यों छेड़ते हो आप । जो समय इस छेड़छाड़ में और नाना प्रकार के रौरे मचाने में नष्ट करते हो उसका सदुपयोग भगवद्भक्ति ही हो सकता है । भगवान को अपना स्वामी, पति, सर्वस्व समझ कर अपने को उनके चरणों में डाल दो । नारायण, नारायण ।

कापालिक—भगवान पति ! सो कैसे वैष्णव ? हम तो स्त्रियां नहीं हैं । (बौद्ध और जैन हट जाते हैं) अरे ओ घुटमुण्डो, ओ बच्चू वर्ग, कहां जा रहे हो ? हम तुमको चबाये नहीं जाते । थोड़ा ठहरो, डण्डा खोपड़ी का प्रणय शेष है । ठहरो, सुने जाओ । यह स्त्री हृदय वाला पुरुष क्या कहता है ।

(वे लोग ठमक जाते हैं)

वैष्णव—कापालिक सज्जन, भगवान का नाम किसी बहाने भी लो, लो तो । जब विपद आती है तब भगवान के सिवाय और कोई आश्रय नहीं रहता । उस समय आंख के आंसू अपने दर्पण में उनको देखना चाहते हैं और वे नहीं दिखलाई पड़ते । इन दीन जनों को मत सताओ ।

श्वेताम्बर—हम दीन जन नहीं हैं । श्रमण कदाचित् हों ।

कापालिक -- (हँसकर) वैष्णव, भगवान के सामने ओढ़नी ओढ़ कर किस प्रकार नाचते हो, कुछ यहां चौक में भी प्रदर्शन करो। इन लोगों को भी ओढ़नी ओढ़ना सिखलाओ।

(श्रमणों और श्वेताम्बरों का प्रस्थान)

वैष्णव—कापालिक सज्जन, मरने के उपरान्त शरीर की भस्म मात्र रह जायगी। उसको भी वायु कहीं ऐसा उड़ा ले जायगी कि एक कण का भी पता न चलेगा। फिर केवल वही ओढ़नी रह जायगी जिसे ओढ़ कर भगवान के सामने कापे थे। वही ओढ़नी जीवन की रखवाली की समर्थता रखती है और वही मरने के पश्चात उस लोक की।

(वैष्णव की आँखें आनन्द में भूम जाती हैं और वह सखी भाव में थोड़ा सा नाचकर, बांसुरी बजाने की भाव भंगी में खड़ा रह जाता है ।)

कापालिक—यदि ऐसे में कोई आपको दो चांदे कनपटी पर जड़ दे तो कौन सा स्वर और ताल बनेगा बहूजी।

(चौक से आने जाने वाले चले जाते हैं। दो रह जाते हैं।)

एक—(दूसरे से) अरे चलो भी, क्या देखते हो, यह तो यहां नित्य ही होता रहता है।

दूसरा—हां कुछ हैं ही नहीं, कुछ धौलधप होती तो ठहर भी जाते। चलो। (वे जाते हैं।)

दूसरा कापालिक—अजी पंर में घुँघरू और पहिन लेते !

एक कापालिक—और आँखों में काजल लगा लेते !

एक और कापालिक—हाथों में चूड़ियां, दांतों में मिस्सी और मूँछ सपाट।

एक कापालिक—छाती पर कंचुकी।

दूसरा कापालिक—कानों में बालियाँ और भूमके, नाक में नथ और बेसर—पूरा शृङ्गार करो वैष्णव जी।

वैष्णव—कितना भी ठट्ठा करो, भगवान् रीझते हैं भक्तों पर ही ।

कापालिक—रे भक्ति पर ! रे नपुंसक !!

वैष्णव—भगवान् के सामने सब नपुंसक हैं, वाचाल कापालिक ।

कापालिक—हमारे भगवान् शङ्कर तो वीर्य और तेज के ब्रह्माण्ड हैं और हम लोगों को वे इसी का वरदान समझते हैं । तुम्हारे विष्णु क्या हैं ? उँह ।

वैष्णव—भगवान् शङ्कर डमरू बजाते-बजाते विष्णु भगवान् के सामने नाचते नाचते नहीं अघाते । परन्तु तुम तो मूर्ख हो । तुमको तो शङ्कर भगवान् भी नहीं समझा सकते ।

सब कापालिक—ऐं ! मारो इस नारीमुख को !! मारो इस नपुंसक को ।

(वैष्णव भागता है । उसके पीछे पीछे कापालिक जाते हैं । दो नागरिकों का दूसरी ओर से प्रवेश ।)

पहला—नगर में इतना दुन्द होता रहता है कि कुछ ठिकाना नहीं ।

दूसरा—चोर उच्चकों का कोई उपद्रव नहीं परन्तु धर्म के धूम-केतुओं के मारे यह धरा थरथरा जाती है । इनका नियन्त्रण नहीं हो पाता ।

पहला—हो कैसे ? धर्म के ऊपर विचार और आचरण करने की इतनी स्वतन्त्रता बढ़ गई है कि नर-बलि से लेकर पुरुष का स्त्री बनना तक सहज ही होता रहता है, और बड़े बड़े वाद-विवाद परिषदों से लेकर गलियों और जन-मार्गों पर तक, खुल्लमखुल्ला मुण्डभंजन, आये दिन की घटनायें हैं । सब धर्म के नाम पर ।

दूसरा—राजा नहीं कुछ कर सकता है ?

पहला—अरे जब हमारी समिति और ये इतने प्रमुख अभिजात, कुछ नहीं कर सकते तो राजा को अधिकार ही क्या ? और फिर इन

कापालिकों का पक्षपात समिति में इतना बढ़ गया है कि न्याय की गति ही रुद्ध हो गई है। उन तीनों जैन सन्यासियों को पकड़ कर ये कापालिक मार डालना चाहते थे। राजा ठीक अवसर पर पहुँच गया, बचा ले आया। तो भी उन लोगों को बन्दीगृह में डाल दिया। उन्होंने क्या अपराध किया था ?

दूसरा—दो तो उनमें से निकल भी भागे।

पहला—निकल भागने की बात पीछे। मैं पूछता हूँ उनका अपराध क्या था ?

दूसरा—वे उस दिन मेले में बहुत अनुचित बक रहे थे।

पहला—इसलिये उनको मार डालना चाहिये था ?

दूसरा—वे उत्तमभद्र थे। उन्होंने कापालिकों का और यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों का बहुत अपमान किया था—और फिर अपने यहाँ कापालिकों को केवल दिन में नर-बलि करने का निषेध है।

पहला—यही तो अव्यस्था का कारण है। चांडालों और सज्जनों के बालक भी इस बलिदान के मिस्र कापालिक मार डालते हैं। यह क्या धर्म है ! मेरा बस चले तो सब कापालिकों को बन्दीगृह में बन्द कर दूँ और कह दूँ कि अब करो एक दूसरे का बलिदान। परन्तु ये लोग युद्धों में काम आते हैं इसलिये इनके अधर्म का दमन नहीं कर पाते।

दूसरा—बर्बर बनवासी भी तो इस प्रकार के बलिदान करते हैं। उनको भी तो नहीं रोका जाता।

पहला—उन्हीं से कापालिकों ने नर-बलि की प्रथा सीखी होगी। परन्तु वे क्षम्य हैं क्योंकि अनजान हैं। ये अक्षम्य हैं क्योंकि समग्र दर्शन शास्त्र के ठेकेदार होते हुये भी ये इतने कुकर्म करते हैं।

दूसरा—वे जो दो निकल भागे, जानते हो उसमें राजा की आँख मिचौनी थी ? वे दोनों उस रात और एक दिन, एक जैन के घर ठहरे रहे, फिर चुपचाप किसी अन्धेरे में सरक गये।

पहला—राजा ने क्यों निकल जाने दिया ?

दूसरा—क्योंकि उसके मन में निष्ठुरता कम है ।

पहला—उसने बहुत अच्छा किया ।

दूसरा—अभिजातों में कुछ सुग सुग चल रही है कि राजा को दण्ड दें या न दें ।

पहला—जनता को बुरा नहीं लगा । प्रमुख और अभिजात कुड़-ड़ कर रह जायेंगे ।

दूसरा—वे दोनों निकल भागे हैं परन्तु अपना एक बड़ा अङ्ग तो पीछे छोड़ गये हैं—राजकुमारी सुनन्दा को ! उसका विवाह अपने राजन्य के साथ होगा ।

पहला—तब धारा के उत्तमभद्रों से मालवगण के प्रति बैर-भाव की मात्रा में कमी आ जायगी, इसलिये कदाचित् निर्दभिल्ल ने उन दोनों मुनियों के निकल भागने में आंख-मिचौनी की होगी ।

(दोनों का बातें करते हुये प्रस्थान)

सातवाँ दृश्य

[स्थान—जङ्गलों पहाड़ों का मार्ग । समय दिन । आगे आगे कालकाचार्य और पीछे वकुल का प्रवेश । कालकाचार्य चिन्तामग्न है ।]

वकुल—आचार्य, आप अपने पूर्व निश्चय पर आ जाइये । आप यदि भ्रम में पड़ जायेंगे तो इस भूमि की कुशल नहीं ।

कालकाचार्य—(किसी विचार में से उभरता हुआ सा) वकुल, अभी लौट पड़ने के लिये समय है, अवसर है । जिन शकों को सहायता के लिये आमन्त्रित किया है वे आकर फिर यहाँ रुक जायेंगे, यहाँ की जनता का शासन करेंगे । देश परतन्त्र हो जायगा ।

वकुल—गुरुदेव, जनता, भूमि और देश केवल भौगोलिक संज्ञायें ही तो हैं। सोचिये कितने अधर्म और कितनी अनीति का प्रसार नहीं है। आपके उपदेश और शास्त्रार्थ का कापालिकों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

कालकाचार्य—(उखड़ता हुआ सा) हां, कापालिक ! ओह कापालिक !! उनकी अपेक्षा विषधर भुजङ्ग अच्छे !!!

वकुल—अधिकांश मालव और यौधेय शैव हैं, कापालिकों के मोसेरे भाई !

कालकाचार्य—कुछ जैन और बौद्ध भी हैं इन दोनों जनपदों में !

वकुल—थोड़े समय उपरान्त सब मिट जायेंगे। कापालिक उनकी भी मुण्डमाल पहनेंगे।

कालकाचार्य—(लुब्ध स्वर में) असम्भव। ऐसा नहीं हो सकेगा।

वकुल—हो नहीं सकेगा ! स्पष्ट हो रहा है गुरुदेव। कापालिकों ने अहिंसावादियों को रौरव नरक की यातनायें दे रखी हैं, उनको अधिकार पदों से उतार दिया गया है। वे अपने धर्म का अनुसरण नहीं कर सकते।

कालकाचार्य—(अधीर होकर) यह सच है, यह सच है, वत्स। परन्तु शकों को जब मैं उज्जैन पर चढ़ा ले आऊँगा, तब मेरा देश परतन्त्र हो जायगा, मैं देशद्रोही कहलाऊँगा। वकुल लौट चलो।

(लौटने को होता है)

वकुल—गुरुदेव, अत्याचारी गर्दभिल्ल उज्जैन में बहिन सुनन्दा को सताता रहे ! कापालिक और ब्राह्मण यज्ञों में नरों और पशुओं को काट कर डालते रहें !! और आप इतने आगे गये हुये पगों के लौटाने की बात करें !!!

कालकाचार्य—(सिर पर दोनों हाथ रख कर) ओह !!!

वकुल—किसी भी निस्सार भ्रम के मोह में मत पड़िये ! दूसरे लोक के देवों ने मालवों और यौधेयों को दण्ड देने के लिये शकों को उत्पन्न किया है और आपको उनके निमन्त्रण का निमित्त बनाया है । नदी की चली हुई धार का प्रवाह, छोड़े हुये बाण का वेग, निकला हुआ शब्द और भस्म किया हुआ शरीर फिर लौटकर नहीं आता । उसी प्रकार आपका इतना बड़ा हुआ पग, शकों को दिया हुआ निमन्त्रण और उनका इस देश में प्रवेश अब कैसे अवरोद्ध होगा ?

कालकाचार्य—(अन्धीर होकर) वकुल ! वकुल !!

वकुल—आचार्य, गुरुकुल में आपकी वाणी का जो प्रसाद मने पाया था उसी का तो उपयोग कर रहा हूँ; धैसे मुझ में बुद्धि ही कितनी है ? सोचिये आपके इस अनिश्चय का बहिन सुनन्दा के भविष्य पर कितना बुरा प्रभाव न पड़ेगा ।

कालकाचार्य—हूँ (सोचता है) शक नायक मेरे विषय में सोचेंगे मैं नितान्त हीन मनुष्य हूँ, बिलकुल अविश्वसनीय । और—

वकुल—और, गुरुदेव, लाखों करोड़ों शक और हण, ऋषिक और विद्गुण, जैन और बौद्ध बनने को तैयार बैठे हैं, अब तो, निर्भ्रम होकर अग्रसर होइये और उनका संचालन करिये ।

कालकाचार्य—हाँ—हूँ—ठीक कहते हो वत्स । मैं कुछ समय के लिये विमन क्यों हो गया था ! आश्चर्य है ! वकुल बढ़ो, कापालिकों और गर्दभिल्ल को दण्ड देना ही पड़ेगा ।

(यवनिका)

दूसरा अंक



पहला दृश्य



[स्थान—शमीनगर, सिन्ध के उत्तरी भाग में केन्नम (वितस्ता) नदी जहाँ सिन्ध से मिली है, उस सङ्गम से दूर, नीचे । समय दिन दोहपर के उपरान्त । शमीनगर के एक विशाल प्रासाद में राजसभा । महाक्षत्रप कुजुल, क्षत्रप भूमक, महाक्षत्रप नहपान नहपान का जामाता उषवदात और मथुरा इत्यादि के क्षत्रप तथा शक नायक । राज सभा में ईरानी तड़क-भड़क है । कुजुल को छोड़ कर ये सब क्षत्रप शक हैं । सिर के बाल या तो कटे हुये हैं या मुड़े हुये । अधिकांश चपितनासिका वाले. रंग ताम्रवर्ण कुल की आंखें नीली या कंजी ठोड़ी पर थोड़े से बाल होठों के दोनों ओर मूँछों की रेखाएँ मात्र, दूर से देखने पर मूँछें मालूम ही नहीं पड़ती । घुटनों के ऊपर तक के भागे और टखनों तक पैजामे । बिना चोंच के जूते पहिने हैं । चौड़े फन की तलवारें कमर में डाले हैं । गले में स्वर्ण और मोतियों की मालायें और कलाहियों पर जड़ाऊ पट्टे ।

पिंडिलियों पर जूतों के ऊपर, टकोरे क्षत्रप ऊँचे मञ्च पर जड़ाऊ और गद्दे, चौकियों के ऊपर बैठे हुये हैं। अन्य सरदार नीचे की चौकियों पर। सरदारों के वस्त्र कुछ कम तड़क-भड़कदार हैं, वैसे ही उनकी वेश भूषा-क्षत्रपों जैसी ही है। महा क्षत्रप कुजुल त्रिपुण्ड लगाये हैं। वह औरों की अपेक्षा कुछ अधिक ऊँची चौकी पर बैठा है। उसकी जंघा के निकट एक विशेष प्रकार का हथियार—सगर—रक्खा है। वह लोहे की गदा है। कुजुल की ठोड़ी पर बहुत ही थोड़े बाल हैं और मूँछ की जगह बाल और भी बहुत कम। उसका सिर बहुत मुड़ा हुआ है मुड़े हुये सिर पर लम्बा किरिट है। नाक तो सभी की चपटी है, परन्तु कुजुल की बहुत चपटी है। उसकी आँखें भी कुछ अधिक धसी हुई हैं। एक ओर ऊँचे आसनों पर कालकाचार्य और वकुल बैठे हुये हैं। ये दोनों बौद्ध श्रमण के वेश में हैं—नीचे कुर्तक ऊपर उत्तरीय, उत्तरीय के नीचे कमर तक धोती, पीठ से कन्धों तक आई है और कन्धों से नीचे छाती पर जाकर दोनों ओर उसमें गांठ बंध गई है। भूमक की लड़की तन्वी आर्य वेश धारणी है। उसकी नाक सीधी है तथा ललाट प्रशस्त। वह अति सुन्दर। आयु लगभग बारह-तेरह वर्ष। वह भूमक के पास बैठी हुई है। द्वारपाल चौर लिये हुये द्वागों पर खड़े हुये हैं। एक ओर बड़ा नगाड़ा रखा हुआ है। उसके पास एक क्षत्रात-शक सिपाही चोट के लिये चप-चाप खड़ा है। प्रासाद के बाहर दूरी पर क्षत्रातों की बड़ी छावनी है जिसका शब्द कभी कभी सुनाई पड़ता है।]

कुजुल—आज कुछ निश्चय करके ही उठिये। ये दोनों जन्म महात्मा अब अधीर हो उठे हैं।

नहपान—बौद्ध हैं, बौद्ध, महाक्षत्रप।

कालकाचार्य—नहीं हैं।

नहपान—और वक्त प्रावार ?

कालकाचार्य—उनका रङ्ग, उन्हीं का जैसा है। परन्तु हमारी समस्या से मत का सम्बन्ध ही क्या है क्षत्रप।

कुजुल—ठीक कहते हो महात्मा जी। हमको किसी के मद से कोई प्रयोजन नहीं। मैं स्वयं शैव हूँ। सत्यानाश करने वाले शिव का प्रतिनिधि। जहां जाता हूँ, बिना किसी पक्षपात के सबके सिरों का एकसा कचूमर निकाल देता हूँ।

कालकाचार्य—शैवों के साथ कोई पक्षपात किया जायगा ?

कुजुल—रंचमात्र भी नहीं। मुझको ज्ञात है कि शिव के गण आपस में लड़ भी जाते हैं। और शिव को यह सब देखकर बड़ा भारी विनोद प्राप्त होता है। वे रक्त की नदियां बहते और चकनाचूर किये गये खोपड़े देखकर ताण्डव नृत्य करने लगते हैं।

भूमक—ऋषिक प्रवर, हम लोगों को बौद्धों पर दया रहती है। उत्तमभद्र इत्यादि बौद्ध हमारे मित्र हैं। हम उनको थोड़ा सा बरका देते हैं।

कुजुल—शककुल के तारे वीर भूमक, आपको भली भांति ज्ञात है कि हम शैव, ऋषिक शक या क्षह्रात बौद्धों पर अब बिलकुल हाथ नहीं उठाते, परन्तु ये जो आर्य बौद्ध हैं (दात पीसकर) इनकी चटनी बना डालना तो हमारा नित्य नियम है।

कालकाचार्य—मालव जन्पदों में बौद्ध और जैन भी हैं कुछ वैष्णव भी। शैव अधिक हैं !

उषवदात—यह वैष्णव कौनसी नवीन निष्पत्ति है ?

वकुल—मैं बतलाता हूँ। आर्यों ने हमारे देश से अपोलो और जुपिटर की कल्पना को चुराकर जो छिचड़ी पकाई है, विष्णु उसी का परिणाम है। उसके हाथ चार कर विधे गये हैं। और वैष्णव—

कालकाचार्य—चुप, चुप। जाने न समझे। वैसे ही चबड़ चबड़ करता है। अपोलो और ज़ुपिटर की खिचड़ी ! मूर्ख कहीं का !! क्षत्रपो, विष्णु आर्यों का प्रति प्राचीन देवता है। सहस्रों लाखों वर्ष पुराना। विष्णु, जिन और बुद्ध का पुजारी है, सेवक है। उसको वैदिक आर्य नाच नाच कर और गा गा कर पूजते हैं।

मथुरा का क्षत्रप—हमने पद्मावती में यह स्वांग देखा है। परन्तु है मनोहर। हम लोग अपने राज्य में इस मत के मानने वालों को मनमानी पूजा करने देते हैं। उनका समय षडयन्त्रों की ओर नहीं जाता। पर हमारे यहाँ के शंख बड़े दुष्ट और कुटिल हैं। हम उनका उपचार कसके करते हैं। अर्थात् जो शक या क्षहरात नहीं है—उनका।

कुजुल—क्षहरातों और शकों में कुछ अन्तर तो है नहीं। विवाह सम्बन्ध होते हैं। नातेदारियां हैं।

भूपक—जो आर्य अपने को शक कहने लगे हैं हम उनके साथ भी सम्बन्ध करने को प्रस्तुत हैं, क्योंकि जिस प्रकार ऋषिकों और हिङ्गुलों में वर्ण व्यवस्था नहीं है, उसी प्रकार हमारे यहाँ भी नहीं है।

वकुल—आर्य अपने को शक कहने लगे हैं ! कौन से आर्य ?

भूमक—हम वैदिक आर्यों को मार डालने या दास बनाने के पहले उनको एक अवसर देते हैं—वे अपने को शक कहने लगे और वौद्ध हो जायें तो बचा दिये जाते हैं।

कालकाचार्य—मुझको ज्ञात है।

कुजुल—हम आर्य शैवों पर कुछ कृपा करते हैं—या तो दास बना लेते हैं या नाक कान काटकर छोड़ देते हैं।

वकुल—आर्य शैवों के बराबर बुरा और कोई हो ही नहीं सकता।

कुजुल—यह भी उत्तम भद्र है क्या कालक जी ?

कालकाचार्य—नहीं। इनका वंश यवन है।

कुजुल—सुन्दर हैं। सलौने हैं। मंने कपिश के राजा हिमात्रि को जो यवन है, पराजित करके भी उसके सिक्के की एक ओर उसका चिन्ह रहने दिया है। (सोचकर) परन्तु मैं अपने सिक्के पर अपनी जाति की पूरी कहानी लिख दूँगा। उसकी एक ओर हमारे देश का दो कुम्भी ऊँट और दूसरी ओर बँल और त्रिशूल रहेगा।

नहपान—इसका अभिप्राय महाक्षत्रप ?

कुजुल—बँल शिव का वाहन है। हम शैव हैं। इसलिये दूसरी ओर बँल, और त्रिशूल हमारा हथियार। ऊँट हमारा बाहक और मित्र।

नहपान—मैं अपने शिक्कों पर शकों का निजत्व बनाये दूँगे हूँ।

कुजुल—आपका निजत्व है कहाँ ? आप लोग तो जहाँ जाते हैं वहाँ के रंग में रंग जाते हैं !

भूमक—हम अपना निजत्व जैसा बनाये रखते हैं उसको यह भारत-वर्ष तो क्या संसार भर जानता है।

कुजुल—हम भी जानते हैं। हमारे ऋषिक जानते हैं और मेरु, कश तथा ऐरायण में अवशेष आपके भाई बन्द भी जानते हैं। आप शहानुशाही शकों, और क्षत्रात शकों के अनेक समूहों में जैसी कुछ परस्पर कलह चलती रहती है, वह भी हम जानते हैं। आपके छयानवे कुल परस्पर जैसा लतियाव करते रहते हैं। वह भी हमसे छिपा नहीं है। अभिमान मत करो क्षत्रप।

(भूमता है और आँखें तरेरता है)

भूमक—और इन्हीं लातों से हम आर्यों के भारत को जैसा कुछ रोंदते रहते हैं वह भी आपसे न छिपा होगा महाक्षत्रप। अठ्ठाईस हाथ लम्बे लट्ठे पर फहराने वाले आठ हाथ चौड़े और बारह हाथ लंबे भगवे भण्डे की सिन्ध और सुराष्ट्र में किसने भुकाया ? मथुरा और पद्मा-वती में—

कालकाचार्य—(तुरन्त खड़े होकर) सुचित ! शान्त !! क्षत्रपो ! शक और ऋषिक वीरो !! आप तो वैदिक आर्यों के विषय में चर्चा करिये विवाद करके परस्पर के भेदों को मत बढ़ाइये । वैदिकों को विदित हो गया है कि आप किसी बड़े अभिप्राय की सिद्धि के लिये भारतवर्ष के इस छोर में एकत्र हुये हैं । मालव यौधेय, आरक, जट इत्यादि कटिबद्ध हो उठे हैं । आन्ध्र का शातर्काणि भी चपल हो रहा होगा । और, आप लोग छोटी छोटी-सी बात के लिये लड़ पड़ते हैं ! शान्त वीरो !!

कुकुल—विदिशा का रामचन्द्र नाग भी, जो कट्टर शैव है, मालवों का साथ देला ।

नह्पान—कादम्ब मंगवाओ और कर्पासिक नर्तकियों को बुलवाओ । संसार भर के विवाद और कलह सुरापात्र और उनकी छमछम में डूब जायंगे ।

(सैनिक नगाड़े पर चोट देता है । द्वारपालों का प्रवेश ।)

द्वारपाल—आज्ञा दो ।

नह्पान—सुरा और सुरा के पात्र तथा कर्पासिक नर्तकियों को भिजवाओ ।

(द्वारपाल जाते हैं ।)

कुकुल—मैं गुडापर्ण की सन्तान हूं, जिसने अपने नाद और बाहुबल से संसार को कम्पित कर दिया था, इसलिये मुझको कभी कभी क्रोध आ जाता है; परन्तु अब वह सब घुल जायगा । मैं, और मेरे ऋषिक शकों और क्षत्रियों के मित्र हैं ।

उषवदात—वे दोनों एक ही हैं, महाक्षत्रप ।

तन्वी—पिताजी, इन्होंने किसी नाथ का नाम लिया था । क्या इस देश में सांप भी राज करते हैं ?

भूमक—बेटी वह सांप नहीं है । मनुष्य है ।

वकुल—परन्तु वह सांपों की पूजा करता है ।

कालकाचार्य—सांपों को बचाने के लिये भगवान ने एक जन्म में अपने शरीर का त्याग किया था, तब से आर्य लोग सांपों की पूजा करने लगे हैं ।

उषवदात—परन्तु यह पूजा तो अनाथों में और अन्य देशों में भी होती सुनी गई है ।

नहपान—विदिशा का रामचन्द्र शैव भी है, और सर्प—पूजक भी है ?

तन्वी—तो वह नाग क्यों कहलाता है ?

नहपान—इसी कारण तो, बेटी ।

तन्वी—विदिशा कहां है ?

भूमक—हम लोग उस ओर भी जायेंगे । तुमको सब देश और नगर दिखलायेंगे । रेंगने वाले नागों को लकड़ी से मारा जाता है, राज्य करने वाले नागों को खड्ग से काटेंगे ।

कजुल—मैं अपने सगर से इन नागों का सिर भुर्ता कहूंगा, देखना बेटी ।

नहपान—आपकी बात से स्मरण हो आया कि रसपान और नाच गान के उपरान्त आगे की योजना पर विचार करना है ।

(सेवक मद्य, सुरापान, इत्यादि लाते हैं । उनके पीछे-पीछे नर्तकियों का प्रवेश । सुरापान आरम्भ होता है । और नर्तकियां गाती नाचती हैं । नर्तकियों का रंग उजले तांबे के रङ्ग का है और वे चटकदार वस्त्रालंकार पहिने हैं । हाथों में गुदने गुदवाये हुये हैं । सब तरुण अवस्था में हैं । बाद्य तार तन्तु के । ताल के लिये मृदङ्ग । नर्तकियों का गायन—)

❀ गीत ❀

(राग भीमपलासी में)

कलशों में जो बची हुई है उसको तुमने क्यों छोड़ा ?

मौज मनाते जीभ थकी क्यों, आँखों ने क्यों पथ मोड़ा ?

असि की धारा में खरतर है ओजों का वह जो अभिमान,
स्वर्ग नरक की संधि सलोनी, जीवन की वह मीठी तान,
झुआ नहीं, जो होने वाला, उसने नाता क्यों तोड़ा ?
कलशों में जो बची हुई है उसको तुमने क्यों छोड़ा ?

(गायन की समाप्ति पर नर्तकियां चली जाती हैं ।)

तन्वी—मैं नाचना गाना सीखूँगी ।

भूमक—सिखला देंगे ।

तन्वी—मैं शीघ्र सीखना चाहती हूँ । हूँ, शीघ्र ।

भूमक—हां, हां, शीघ्र ।

तन्वी—और मैं गुदने भी गुदवाऊँगी ।

भूमक—इतने बहुत ! तुम्हारा गोरा हाथ भद्दा दिखलाई पड़ने लगेगा ।

तन्वी—मैं तो गुदवाऊँगी ।

भूमक—अच्छा हाथ पर तुम्हारा और अपना नाम गुदवा दूँगा ।
बस ?

तन्वी—(प्रसन्न होकर) हां, हां, पिता जी, बहुत ठीक ।

कालकाचार्य—उज्जैन का राजा गर्दभिल्ल बड़ा पापी और दुष्ट है ।
जनपद उसके मारे घबरा उठा है । कापालिकों को आश्रय देता है ।
कापालिक मनुष्यों का बलिदान करते हैं ।

वकुल—भूमि बहुत उपजाऊ, हरी भरी और सोने चांदी से पुरी
हुई है । यज्ञों की ओट में ब्राह्मण बहुत लूटते खाते हैं ।

(सुरापान बढ़ता है ।)

भूमक—मैंने भी सुना है । विचित्र देश है । विलक्षण रीतियां हैं । हाथ धोने के पहले पैर धोते हैं ! पैजामे के बन्ध की गांठ पीछे नितम्बों के ऊपर लगाते हैं । ह ! ह ! ह ! कसे हुये जूते पहनते हैं जिनके पीछे की लम्बी पुच्छी पिंडली के नीचे लौट जाती है । कटार को दाहिनी ओर बाँधते हैं मूर्ख !! प्रत्येक बात में स्त्रियों की सम्मति पहले लेते हैं !!! हाथ मिलाते हैं गदेली की पीठ से ! ह ! ह ! ह ! बाईं ओर से दाहिनी ओर लिखते हैं ! पुस्तक का नाम अन्त में देते हैं !! इनके यहां बुनकर अशुद्ध ! खटीक और शौडिक शुद्ध !! मूर्ख हैं !!! मूर्ख हैं !!!! शौडिक और सुरा वितरित करो ।

(शौडिग सुरा बांटता है ।)

उषवदात—परन्तु इनके ब्राह्मण बहुत चालाक, चतुर, विद्वान और प्रभावशाली हैं । जनता उनको बहुत मानती है ।

कालकाचाय—वे लोग बड़े पाखण्डी हैं, धूर्त और भ्रमों का जाल फँलाने वाले ।

उषवदात—हां, हां; सो तो है ही । कुछ दे दिवाकर उन लोगों को हाथ में ले लेंगे । संस्कृत बोलते हैं । उनके संस्कृत मन्त्रों में जादू होता है ।

तन्वी— मैं गुदना संसकिरत में गुदाऊंगी ।

भूमक— अपनी बोली आत्मीकान्त है और लिपि खरोष्टी । उसी से गुदना लिखा जायगा ।

तन्वी—नहीं, मैं संसकिरत में गुदवाऊंगी लोग समझेंगे मैं जादूगर हूँ ।

भूमक—अच्छा, अच्छा अब बात करने दो ।

कुजुल—बेटी तुम जाओ यहां से । खेलो कूदो । नाचना गाना सीखो ।

तन्वी—हूँ, मुझको यहीं अच्छा लगता है !

भूमक—मेरे कोई भाई नहीं है जो उत्तराधिकारी होता । पुत्र भी नहीं है । इसी को भाई और पुत्र समझता हूँ । शौंडिक, सुरापात्र हटा ले जाओ ।

(शौंडिक सुरा-पात्र उटा ले जाता है ।)

कुजुल—आचार्य जी, कितने उत्तम भद्र हमारा साथ देने के लिये रणक्षेत्र में आयेंगे ?

कालकाचार्य—एक लाख की आशा करता हूँ । एक तिहाई के लगभग भद्रावती से, शेष सुराष्ट्र के उत्तर—पुष्कर से ।

घटाक—कितने हाथी ?

कालकाचार्य—दो सौ ।

नहपान—हम लोगों को हाथियों की आवश्यकता नहीं है । कपिशा, कम्बोज, वाल्हीक और सोवीर के घोड़ों का सामना हाथी नहीं कर सकते । कुछ रथ है ?

कालकाचार्य—हां, दो सहस्र ।

कुजुल—चिन्ता नहीं है ।

उषवदात—हमारी और महाक्षत्रप कुजल की सम्मिलित सेना लगभग दस लक्ष होगी । मालवगण कितनी सेना हमारा विरोध करने के लिये लायेंगे ?

कालकाचार्य—दस लाख के ऊपर ला सकते हैं । योधेय मालवों का साथ देंगे ।

कुजुल—क्षत्रपो, मेरी सम्मति है कि चारों दिशाओं में धावा करो । मैं अकेला दस लाख के भिन्न भिन्न यूथ लेकर मुल्तान के उत्तर से चढ़ाई करूँगा । क्षत्रप नहपान और उषवदात और भूमक दक्षिण पूर्व से सुराष्ट्र लाट और परान्त को दाबते हूये । मालवों द्वारा पुष्कर में जो उत्तम भद्र धिर गये हैं, हम उनको त्राण देंगे । फिर क्षत्रप घटाक मथुरा और

पद्मावती से और उत्तमभद्र लोग नलपुर के नीचे विन्ध्यप्रदेश के जनपदों और विदिशा के नागों को चुनौती देते हुये ।

तन्वी—सांपों से लड़ाई होगी क्या पिता जी ?

भूमक—नहीं बेटो, अभी बतलाया था न ? मनुष्य होते हुये भी वे मूर्ख अपने को नाग कहते हैं ।

तन्वी—हां, हां, मैं भूल गई थी । तो गुदना गुदवा दीजिये संसकिरत में उसके जादू से जीत हो जायगी ।

भूमक—अच्छा, अच्छा, थोड़ा ठहर ।

नह्पान—मुझको यह सम्मति रुचती है ।

उषवदात—ठीक है ।

घटाक—स्वीकार है ।

घटाक—मुझको भी ।

कालकाचार्य—उत्तमभद्रों को भी इसमें सुविधा होगी । मैं जाकर उनको सचेत करता हूँ । वर्षा ऋतु के पहले उत्तमभद्र नलपुर के बड़े भारी गढ़ को अपने अधिकार में कर लेंगे । कालञ्जर एक दूसरा बड़ा भारी गढ़ है । उत्तमभद्र उसको भी ले लेंगे । और...

कुजुल—देखिये आचार्य जी, आप बड़े महात्मा हैं सही, परन्तु युद्ध के मर्म को नहीं जानते । या तो उत्तमभद्र नलपुर पर ध्यान को स्थिर करें या कालञ्जर पर । यदि उत्तमभद्र कालञ्जर पर आक्रमण करें तो मथुरा के क्षत्रप नलपुर पर झपट लगा देंगे ।

कालकाचार्य—सन्यास लेने के पूर्व मैंने सैन्य-संचालन किया है, परन्तु जाने बीजिये । आप जैसा कहते हैं वैसा ही होगा । पूर्वोक्त उत्तमभद्रों का ध्येय नलपुर रहेगा ।

मथुरा का क्षत्रप—और हमारा महेन्द्रगिरि । वहां से हम कालञ्जर पर आक्रमण करेंगे ।

वकुल—वेत्रवती के उस पार कालञ्जर के मार्ग पर हमारी जाति की एक शाखा यामुन नाम की रहती है। उसी के नाम से एक बड़ा गाँव यामुनी है। यामुन लोग आपकी बड़ी सहायता करेंगे।

मथुरा का क्षत्रप—(मुस्करा कर) हम उसको बढ़ाकर नगर बना देंगे और यामुन शकराष्ट्र उसका नाम रख देंगे।

उपवदात—मालवों का नेता होगा आचार्य, कुछ बतला सकते हैं आप ?

कालकाचार्य—वही होगा दुष्ट बुराचारी गर्दभिल्ल।

कुजुल—और कोई ?

कालकाचार्य—एक इन्द्रसेन नलपुर जनपद में है।

कुजुल—यह कौन है ?

कालकाचार्य—वैदिक आर्य है।

नहपान—शैव।

कालकाचार्य—शैव नहीं है, वैष्णव है। एक वर्ग उठ खड़ा हुआ है जो अपने को वैष्णव कहता है। वैष्णवों की कुछ चर्चा अभी हुई थी।

कुजुल—वैष्णव ! वैष्णव !! शैव भी नहीं !!! मुल्तान की ओर लड़ने आवे तो मैं भी देखूँ उसको।

कालकाचार्य—कह नहीं सकता। परन्तु वह जनपदों को बहुत उत्तेजित करता फिरता है। भिन्न भिन्न गणों के संघ बनाने का प्रयास कर रहा है।

तन्वी—मैं नाचना सीखूँगी।

भूमक—ठहर, ठहर। (कालक से) वह क्या कहता फिरता है ?

वकुल—शकों, क्षहर्तों और ऋषकों तथा हिंगुणों की बहुत निन्दा करता है। आप लोगों को नारी-दुःख कहता है, नपुंसक बतलाता है। बौद्धों के विरुद्ध विष के बीज बोता फिर रहा है। उत्तमभद्रों के तो पीछे ही पड़ गया है।

भूमक—नारी-मुख कहता है ! हूँ !

कालकाचार्य—हां कहता तो है ।

कुजुल—नपुंसक बतलाता है ! हूँ—ऊँ !

(गुर्ज को संभालता है ।)

नहपान—कार्य-प्रणाली स्थिर हो गई, अब कार्य का आरम्भ हो ।

(सब खड़े हो जाते हैं ।)

सब के सब—हो, कार्य का आरम्भ हो !

कुजुल—मालवगण का चूरमा कर दो !!

नहपान—विन्ध्य प्रदेश को धूल में मिला दो !!!

भूमक—आर्यावर्त का कचूमर निकाल दो !!!!

(उत्तेजित होकर सब एक ओर से प्रस्थान । कालकाचार्य और वकुल रुक जाते हैं । कालकाचार्य और वकुल को रुका हुआ देखकर भूमक और उषवदात लौट पड़ते हैं । भूमक के साथ तन्वी भी ।)

उषवदात—आचार्य, ठिठक कैसे गये ?

कालकाचार्य—आ रहा था । वहां से सीधा कहां जाना ? , इस प्रसङ्ग पर वकुल से परामर्श करना था ।

भूमक—मैं यह पूछने को लौट पड़ा कि अब आगे आप कहां मिलेंगे ?

कालकाचार्य—आपकी विजय का स्वागत करने को उज्जैन में ।

भूमक—इसके पहले हमको किसी दूत के द्वारा, उत्तमभद्रों को बढ़ने का और मालवों तथा उनके सहायकों की गति-विधि का समाचार मिलता रहना चाहिये ।

कालकाचार्य—मिलता रहेगा । प्रबन्ध कर लूंगा । भिक्षु और श्रमण घूमते रहते हैं । उनकी यात्रा अबाध रहती है । उन्हीं के द्वारा समाचार भेजता रहूंगा । आपकी आत्मीकान्त भाषा और खरोष्ठा लिपि में ।

भूमक—ठीक है ।

तन्वी—उज्जैन क्या है ? कैसा है ? कब पहुँचेंगे ? क्या वह वैष्णव नाचता भी होगा ?

भूमक—एक साथ इतने प्रश्न ? चलो अब ।

तन्वी—हूँ—ऊँ ।

[सब का प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

[स्थान—उज्जैन के राज भवन से दाईं ओर लगा हुआ उद्यान । राज भवन का एक भाग दिखलाई पड़ता है और उसमें लगे हुये उद्यान का एक अंश दूसरी ओर पर । राजभवन को दाईं ओर जनमार्ग । जनमार्ग से उद्यान नहीं दिखलाई पड़ता है । भवन के ऊपरी खंड में गोख और झरोखे हैं जो जनपथ पर खुलते हैं । उद्यान से भवन के ऊपरी खंड में जाने के लिये भीतर से मार्ग है बायें पार्श्व से जन मार्ग पर जाने आने वाले भवन के उस भाग के नीचे से निकल कर बायें पार्श्व की दिशा से लौट सकते हैं । समय—सध्या । दिन की तपन के उपरान्त अब वायु में शीतलता आ गई है ।]

(मुनन्दा का प्रवेश । पीछे पीछे कुछ सखियां इठलाती हैं ।)

मुनन्दा—ये पुष्प इतने सुन्दर हैं कि इनका तोड़ना मैं अपराध समझती हूँ ।

एक सखी—तो क्या इनका दूर से ही दर्शन करना है ? परन्तु पराग-परिमल तो उनका फैल-फैल कर, बरबस हृदय में बैठ कर, तभी विराम लेगा जब वे तोड़ लिये जायें ।

मुनन्दा—वह उनका गुण है । तोड़ना उनके साथ अत्याचार करना है ।

सखी—तब सौन्दर्य को दूर से ही प्रणाम करके सन्तुष्ट रहना चाहिये । स्मरण रखूँगी ।

सुनन्दा—रूप, रस और गन्ध के मेल से जो सौन्दर्य बनता है वह कितने दिनों टिकता है ? उसके मोह में पड़कर जो समय का नाश करता है, समय उसका नाश करके ही मानता है ।

सखी—फिर भी उसकी रेखायें आँख को पकड़ती हैं ।

सुनन्दा—भीतर की आँख को नहीं—ज्ञान चक्षु को नहीं ।

(सखियाँ आड़ में से किसी को आता देखती हैं । सुनन्दा का ध्यान नहीं जाता)

सखी—यहीं तक पहुँचाने आना था । हम सब जाती हैं ।

(सग्नियाँ एक दूसरे को सकेत करके जाती हैं)

(गर्दभिल्ल का प्रवेश)

सुनन्दा—(स्थिर स्वर में) महाराज—

गर्दभिल्ल—‘महाराज’ कहा आपने देवी ! मैं वास्तव में महाराज हो जाऊँ तो इन गणपतियों और कुलपतियों के परस्पर वंमनस्य, द्वेष और विवाद करने के अभ्यास को कुचल डालूँ । शक अनेक दिशाओं से मालवों पर आक्रमण कर रहे हैं । मालवों के सोलह विविध जनपदों के गणपतियों और छोटे छोटे गणपकों को भली भाँति उनका कर्तव्य समझाया, परन्तु वे मूढ़ न समझ सके । सोचता हूँ सैन्यबल बढ़ाकर इन सब का दमन करूँ । आप—

सुनन्दा—मुझे इस प्रसङ्ग में कोई रुचि नहीं है । मैं केवल अपना उद्धार चाहती हूँ ।

गर्दभिल्ल—ऐसे सङ्कटमय काल में आप अकेली कहाँ जायँगी ? फूलों की इस देह की उपेक्षा मत करिये ।

सुनन्दा—(कठोर रुखे स्वर में) जिस मिट्टी से फूल बने हैं उसी से मेरी देह बनी है । इस मिट्टी के कणों में जो आत्मा है उसे परखिये ।

गर्दभिल्ल—मैं आपसे ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ ।

सुनन्दा—मुझे बन्दी बनाकर ?

गर्दभिल्ल - नहीं, रानी बनाकर ?

सुनन्दा—(लुब्ध स्वर में) आर्य के मुँह से राक्षस की भाषा ! जो मालव अपने को आर्य कहकर सम्मानित करना चाहते हैं, जान पड़ता है, उनका अन्त निकट है । (आकाश की ओर देखती है)

गर्दभिल्ल—(क्रूर कायर के स्वर कम्प से) आपने अभी तक युद्धों के रक्तपात को नहीं देखा है । मालवों का नाश होने के पहले उत्तमभद्रों का हो जायगा । मैंने कापालिकों का नेतृत्व इसी कारण स्वीकार किया है । आप यहां कापालिकों और मेरे ही द्वारा सुरक्षित हैं ।

सुनन्दा—जैसे आप लोग बलिदान के लिये बलि-पशु की रक्षा करते हैं । कच्छप भी तो आपके नेतृत्व में होंगे जिन्होंने उत्तमभद्रों के गांवों में आग लगाई थी और मेरे भाई को लूटा था । क्या कच्छप भी आर्य हैं ?

गर्दभिल्ल—(साहस बटोर कर) उन कापालिकों से उस रात मैंने आपकी देह की रक्षा की थी; क्या उस पर मेरा कोई अधिकार नहीं ?

सुनन्दा देह को जब कोढ़ लग जाता है, तब भी कोढ़ देह का अधिकार नहीं बन पाता । देह का क्षय हो जाता है, परन्तु आत्मा जग-मगाती रहती है । देह को मैं नष्ट कर डालूँ, परन्तु आत्मा नष्ट नहीं हो सकेगी ।

गर्दभिल्ल (कुल्ल घबराकर) तो क्या आप आत्माघात करेगी ?

सुनन्दा - आत्माघात करना होता तो कभी का कर डालती, आत्म-घात कायर करते हैं । मैं कायर नहीं हूँ । मैंने अपने जीवन का जो ध्येय निश्चित किया है उसको करके रहूँगी ।

(भवन में घटा बजता है और डंके पर चोट पड़ती है । भवन के बाहर लगी हुई सड़क पर कोलाहल होता है)

गर्दभिल्ल—(लुब्ध होकर) कण्ठ तक प्राण आ गया है इन भक्तों के कारण ।

(सुनन्दा दूसरी दिशा में मुँह फेर लेती है)

गर्दभिल्ल—फिर दर्शन करूँगा, देवी ।

सुनन्दा—(मुँह फेरे हुये ही) आत्मदर्शन कीजिये । मिट्टी के दर्शन से कुछ नहीं मिलेगा ।

(गर्दभिल्ल भीतरी मार्ग से भवन के ऊपरी खण्ड की गोख पर जा पहुँचता है और सुनन्दा उद्यान के एक अदृष्ट भाग में चली जाती है । जाते समय एक दूसरे की ओर नहीं देखते । मार्ग में कापालिक, बौद्ध, जैन, इत्यादि जनता की सम्मिलित भीड़ कोलाहल कर रही है ।)

गर्दभिल्ल—क्या है नागरो ?

एक कापालिक—अभी अभी समाचार आया है कि शक लोग हमारे जनपद में घुस आये है । मालव जनपदों के गणपति और गणपक अभी अपने डेरों में वाद विवाद ही कर रहे हैं । इनको यहाँ से शीघ्र निकालिये । हम लोग अपने मत्त मयूर को उड़ाते हुये अभी इन दुष्टों पर पिले पड़ते हैं ।

दूसरा नागरिक—वे लोग गाँव के गाँव जलाते हुये चले आ रहे हैं । स्त्री, बालक, गो, ब्राह्मण सबका विध्वंस करते हुये बढ़ रहे हैं । वैदिक मन्दिरों को तोड़ तोड़ कर धूल में मिलाते चले आ रहे हैं ।

एक कापालिक—बौद्ध मन्दिरों, मठों और विहारों को बचाते चले आ रहे हैं !

एक बौद्ध—वे विदेशी है । अवर्ण है । किसी को नहीं छोड़ते ।

एक नागरिक—भूठ, नितान्त भूठ । बौद्धों को बचाते आते है । मुझको पता है ।

गर्दभिल्ल—शांत नागरो, शांत ।

दूसरा नागरिक—सेना को चलाइये । तब शांति होगा । हम लोग युद्ध के लिये सन्नद्ध हैं ।

एक नागरिक—सुराष्ट्र लाट और परान्त से भाग भाग कर कुछ लोग आ रहे हैं। वे लोग और भी बड़ी बड़ी भयंकर बातें कहते हैं। शकों के अत्याचारों से मेदिनी कांप उठी है।

गर्दभिल्ल—व्यथित न हो सज्जनो। अभी सब प्रबन्ध होता है। मैं मालवों की सेना को लेकर शीघ्र आगे जाता हूँ तथा जनपदों के गण-पतियों को यहाँ से विदा करता हूँ। आप लोग शांति पूर्वक अपना अपना काम देखें।

(गर्दभिल्ल चला जाता है। जनता की भीड़ भी बिखर कर, जाती है। दो कापालिक जाते जाते धीरे धीरे परस्पर वार्तालाप करते हैं।)

एक—इस राजा ने जब से उस कुमारी के साथ अत्याचार किया, तब से तो यह राजा रखने ही योग्य नहीं रहा।

दूसरा—इस समय कुछ नहीं किया जा सकता। युद्ध-काल है, धर्म से काम लेना पड़ेगा।

पहला—परन्तु है गर्दभिल्ल नितान्त निकम्मा।

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—नासिक के पास युद्ध क्षेत्र। इधर उधर पहाड़ियां नाले और वृक्ष समूह। समय दिन। क्षहरात शकों की लम्बी चौड़ी छावनी। भूमक, नहपान उपवदात इत्यादि शक नायकों के निवेश भूमक, नहपान और उपवदात का सेना नायकों के सजीले वेश में, और कालकाचार्य तथा वकुल का श्रावक वेश में प्रवेश।]

उपवदात—मालव तो हमारी हुंकारमात्र से भाग गये। ह ! ह ! ह ! युद्ध का तो योग ही नहीं आया। कापालिकों की गर्दन के कतरन के लिये हमारे सिपाहियों के हाथ सहलाते ही रह गये ! सिगा, भेरी और रम्मट

का शब्द कुछ दूर से सुनने को मिल गया, परन्तु बजाने वाले न जाने कहां छिप रहे और कब कर्पूर हो गये। त्रिशूल, खड्ग और धनुष बाणों को डोंगें तो बहुत सुनी थीं, परन्तु करतब कुछ न देख पाया ! मन की मन में रह गई !!

कालकाचार्य—कदाचित् ये सब उज्जैन में एकत्रित हो रहे होंगे। वहां युद्ध होगा।

उषवदात—आचार्य जी, वे अब कहीं नहीं ठहरेंगे। उत्तमभद्रों को पुष्कर में निस्तार मिल गया। वे वर्षा के कारण भंभट में फँस गये थे उनके संकट का मोचन हो गया। उस ओर से उज्जैन पर उनके चढ़ दौड़ने की सूचना पाकर अब पूरी उज्जैन नगरी के पर उखड़ जायेंगे।

भूमक—खेद है कि मैं उस अवसर पर न रह सकूँगा। सुना है कि सिन्धुसौवीर के हमारे छोटे छोटे आधीन क्षत्रपों ने द्रोह का भंडा खड़ा कर दिया है। इन लोगों को मालवों या यौधेयों ने भड़काया होगा (दांत पीसकर) इन सब को पीस कर यदि मैंने चूर्ण न कर दिया तो मेरा नाम भूमक नहीं। मैं गूढ़ पुरुषों के समाचार की बाट जोह रहा हूँ।

कालकाचार्य—नलपुर में इन्द्रसेन वंष्णव ने उत्तमभद्रों को परास्त कर दिया है, यह बात मन को कसक रही है।

भूमक—मथुरा और पद्मावती के क्षत्रपों की मूर्खता उसका कारण है। आचार्य, हम शीघ्र प्रतिशोध करेंगे।

नह्पान—देखिये तो, हम थोड़े से ही समय में इन्द्रसेन के जनपद की क्या दशा किये देते हैं। आग और तलवार से युगों तक हू हू और हाहाकार निकलते रहेंगे।

(एक शक का सैनिक वेश में प्रवेश)

सैनिक—(प्रणाम करने के उपरान्त) स्वामी, सिन्धुसौवीर के क्षत्रपों ने अपने को स्वाधीन कर लिया है। उन्होंने अपने अपने नाम की

मुद्रायें ढाली हैं। कपिश के यवन महाराज हिमाद्रि का अंकन एक ओर है और अपना दूसरी ओर !

भूमक—(दोठ काटकर) कपिश का हिमाद्रि ! जिसका सम्पर्क मैंने अपनी मुद्रा पर से अतिकाल हुआ जब मिटा दिया था। यह साहस इन दुष्ट दम्भियों का !! नहपान, मैं आपसे विदा लूंगा इसी समय उत्तर पश्चिम की दिशा में कूच करूंगा।

नहपान - अभी।

भूमक—हां अभी। महाक्षत्रप ! हम शक इन मालवों की भांति दीर्घ सूत्री और शिथिल थोड़े ही हैं। आपको चिन्ता ही क्या है ? उत्तम-भद्र स्वाधीन हो गये हैं। मथुरा और पद्मावती के शकों के समूह के समूह चढ़ते चले आधेंगे। उत्तर में पंचनद का केसरी रणबांकुरा महारथी कुजुल असंख्य सेना लेकर बढ़ रहा होगा। तक्षशिला के लिखक और पतिक कुजुल के साथ इस प्रवाह पर आरुढ़ होकर चले आ रहे होंगे। अब तक ये सब मालवों को आकर घेरें, तब तक मैं सिन्धुसौवीर तथा कपिश को और अटक पड़ी तो ऐरायण को भी विध्वंस कर लौट पड़ूंगा। सैनिक जाओ, मेरे दल को प्रस्थान करने की सूचना दो।

(सैनिक का प्रस्थान)

(तन्वी का प्रवेश। सुमन मालायें डाले हुये हैं।)

तन्वी—ऐसा मनोहर देश छोड़ कर आप कहां जा रहे हैं, पिता जी उस ओर रेतिले मैदान हैं, पेड़ कम और नंगे पहाड़ अधिक। मैं नाचना गाना बहुत अच्छा सीख रही हूँ। संस्कृत और प्राकृत का भी अध्ययन कर रही हूँ। सब का अभ्यास छूट जायगा।

भूमक—(मृदुल पड़कर) यही एक समस्या है।

उपवदात—इसको मेरे पास छोड़ दीजिये। आप कहां लिये लिये फिरेंगे ?

कालकाचार्य—हम लोग इसकी देखभाल भली भांति कर सकते हैं मैं इसको पढ़ाने के लिये और अधिक समय दूँगा अति प्रखर बुद्धि की है कन्या ।

तन्वी—(हँसकर) परन्तु मैं भिक्षुणी या श्राविका नहीं बनूँगी । क्या भिक्षुणी नाच गा सकती है ।

कालकाचार्य—नृत्य गान तो नहीं कर सकती । निषिद्ध है । परन्तु उनका जीवन बहुत सुखी होता है । पर्वत शिखर की ऊँचाई स्वयं एक सौन्दर्य है । ऊषा का पीतपट अपना निज का एक आकर्षण रखता है, तप में स्वर्ण से अधिक अपना ही चोखापन है । भिक्षुणी तथा श्राविका की त्याग द्वारा अर्जित अपनी विशालता, आत्मिक शांति की महानता, दुख पीड़ा और मोह पर हँसते हुये उतराते रहने की अनुभूति, नृत्य और गान के क्षणिक रस को उपेक्षा और ग्लानि की दृष्टि से देखते हैं ? और—

(अनुसुनी करके भूमक उषवदात को अलग ले जाता है)

भूमक—मैं तन्वी को यहीं छोड़ जाने का पहले भी निश्चय कर चुका था । बौद्ध तो यह है ही परन्तु भिक्षुणी न बनने पावे । दूसरी बात—क्या महाक्षत्रप नहपान को मेरे सङ्ग कर सकोगे ?

उषवदात—दोनों आज्ञाओं का पालन संभव है, महाक्षत्रप । वास्तव में है भी हमारे पास आवश्यकता से अधिक सेना । ले जाइये इसके एक बड़े अङ्ग को अपने साथ । महाक्षत्रप से कहलें, आइये ।

(दोनों नहपान के पास जाते हैं)

भूमक — आपको मेरी सहायता के लिये चलना होगा ।

नहपान—मुझको कोई आपत्ति नहीं है । यहां के जनपदों को ठिकाने लगाने के लिये अकेला उषवदात ही पर्याप्त है । क्या कहते हो कालक जी ?

कालकाचार्य—यौधेयगण अपने को सदा से अजेय समझता आया है ! उसको यहां के लोग जयमन्त्रधारी कहते हैं ।

उषवदात—आगे न समझ सकेगा ।

कालकाचार्य—तो ठीक है, क्षत्रप ।

तन्वी—तो मैं यहीं रहूंगी ? पिता जी आप कब तक लौटेंगे ?

भूमक—अनिश्चित है बेटी, परन्तु अविलम्ब आऊंगा । सिन्धुसौवीर के उन छोटे छोटे क्षत्रपों ने मुद्रा से मेरा नाम हटा कर हिमाद्रि का नाम अङ्कित करा दिया है ! हूँ ! देखता हूँ । मेरे राज्य को मिटाना चाहते हैं ये अभागे !! इनको ठिकाने लगाकर लौटूंगा ।

(तन्वी को गोद में लेकर उसके सिर पर हाथ फेरता है)

भूमक—(तन्वी को गोद से उतारकर) यह सुखपूर्वक रहे, बस और इसके अतिरिक्त मेरी कोई इच्छा नहीं ।

(तन्वी उदास हो जाती है । भूमक नहपान को लेकर जाता है । नेपथ्य में भूमक के डंकों पर चोट पड़ती है । वह अपनी, तथा नहपान की कुछ सेना सहित प्रस्थान करता है प्रस्थान का रव क्रमशः विलीन हो जाता है ।

उषवदात—बेटी तुम उदास क्यों हो ? तुम को किसी प्रकार का भी दुख न होने पायगा । इच्छानुसार नाचना, गाना और पढ़ना ।

तन्वी—मैं कितने समय में पढ़ लिख जाऊंगी ?

कालकाचार्य—एक दो वर्ष में । मेरे अध्यापन की प्रणाली ऐसी है कि थोड़े समय में मेरे विद्यापीठ का मूर्ख विद्यार्थी भी पंडित हो जाता था (यकायक अपनी बहिन सुनन्दा के वाल्य-काल का स्मरण हो आता है और वह खिन्न हो जाता है —।—) (धीरे से) सुनन्दा !

तन्वी—मुझसे कहते थे उदास मत हो और आप स्वयं क्यों उदास हो गये ?

कालकाचार्य—यों ही बेटो । तुम्हारी ही जैसी मेरी बहिन भी थी ।
उसको पढ़ाया था । स्मरण हो आया !

तन्वी—कहाँ हैं वे, गुरुजी कहाँ हैं वे ?

(कालकाचार्य की आँख उठती है)

कालकाचार्य—(बहुत धीरे) कह नहीं सकता । मालवों ने उनको
बन्दी कर लिया था । ज्ञात नहीं अब कहाँ है । उज्जैन चलकर खोज
करूँगा ।

उषवदात—अवश्य, आचार्य, अवश्य ।

(उषवदात के सहायक सेनापति का प्रवेश ।)

स० सेनापति—शाहु उषवदात की जय हो । समाचार आया है
कि उज्जैन में शत्रुओं का एक विशाल दल एकत्र हो रहा है ।

उषवदात—कोई नई बात नहीं ।

स० सेनापति—मुल्तान के उत्तर में यौधेयों ने कुजुल, लियक और
पतिक की सेनाओं को रोक लिया है । पद्मावती के दल, पूर्व और
दक्षिण मालव की दिशा में कमान के आकार में बढ़ते चले आ रहे हैं
और उनके साथ भद्रों की भी सेना है ।

उषवदात—अब हम लोगों को उज्जैन पर बिजली के वेग की
भाँति टूट पड़ना चाहिये । इधर के विजित प्रदेशों का प्रबन्ध तुम्हारे हाथ
में रहेगा । मैं चाहता हूँ कि यहाँ के प्रचलित आचार के अनुसार शासन
प्रबन्ध किया जाय ।

स० सेनापति—जो आज्ञा, मुझको इन प्रदेशों की थोड़ी सी जान-
कारी है भी ।

कालकाचार्य—मैं कुछ कहूँ महाक्षत्रप ?

उषवदात—अवश्य आचार्य ।

कालकाचार्य—इन प्रदेशों में के जनपदों में जो प्रभावशाली गण-
पति हैं उनको समाप्त करिये और छोटे छोटे प्रभावहीन गणपकों और

ग्राम प्रमुखों को अपनाइये ये प्रभावशाली गणपति ही सम्पूर्ण विरोध की जड़ हैं और इसमें अधिकांश शैव हैं ।

उपवदात—जनपदों के जो लोग अपने को बौद्ध कहेंगे और शक घोषित कर देंगे वे ही त्राह पा सकेंगे । गणपतियों और गणपकों का, सबका विनाश कर दूँगा । मुझको आश्चर्य है कि यहाँ भूमि का स्वामी राजा नहीं है वरन् जिसके हल के नीचे हो वह है ! हमारे यहाँ समग्र भूमि और सम्पूर्ण देश का स्वामी शाह या शत्रप होता है । इस देश में भी मैं यही नियम चलाऊँगा, तब यहाँ की जनता की बुद्धि ठिकाने आयगी ।

कालकाचार्य—जनता बिलबिला उठेगी भूमि के अपहरण से ।

उपवदात—मैं किसी की भूमि छीनूँगा नहीं, परन्तु राज्य के हित के लिये छीनने की सुविधा नियम में रखूँगा । हमारे नियमों के विरुद्ध जो कोई भी आचरण करे उसको वध और हाथ पाँव काटने, आँखें निकलवाने इत्यादि के दण्ड के साथ साथ भूमि छीने जाने का भी दण्ड दिया जायगा ।

कालकाचार्य—फिर इस अपहृत भूमि का क्या होगा महाक्षत्रप ?

उपवदात—यह छीनी हुई भूमि आज्ञाकारियों को दे दी जायगी । प्रत्येक भूमि खण्ड के भाग का संग्रह किया जायगा जिसमें जनता को स्मरण रहे कि उसका सम्बन्ध ग्राम-मुख्यों से बहुत कम है और शाह या क्षत्रप से बहुत अधिक । ग्राम-मुख्य भूमिकर इत्यादि भोगों का संग्रह करके हमारे भोगिक को देगा और वह उसको हमारे कोष में प्रविष्ट करता रहेगा ।

कालकाचार्य—शाह —

उपवदात—परन्तु मठ, बिहार, संघ इत्यादि इस व्यवहार से मुक्त रहेंगे । मैं एक दान उसको अभी करता हूँ । यहीं की एक गुहा त्रिरस्मि पर्वत की तीसरी गुहा नासिक के संघ को लगाता हूँ । कन्दरा की शिला पर लेख उत्कीर्ण किया जायगा ।

तन्वी—उसके साथ अपना विजय का लेख नहीं खुदवायेंगे क्या ?

उपवदात—हां, हां, अवश्य । क्यों आचार्य ?

कालकाचार्य—आप दानी हैं । उत्कीर्ण कराइये अपनी यशवार्ता को ।

तन्वी—मैं अपनी एक बांह पर गुरुजी का नाम गुदवाऊंगी ।

कालकाचार्य—(प्रसन्न होकर) उससे तुमको क्या प्राप्त होगा बेटो ।

तन्वी—हर्ष मिलेगा । देखिये, कन्धे के नीचे एक ओर मैंने गुदवा लिया है शहानुशाही महाक्षत्रप भूमक की पुत्री, दूसरी बांह पर गुदवाऊंगी आचार्य कालक की शिष्या । ह ! ह ! ह ! ह ! कितना अच्छा रहेगा । ह ! ह ! ह !

उपवदात—ठीक कहती है बेटो । कितनी चतुर है आचार्य यह !

कालकाचार्य -- (मुस्कगकर) अत्यधिक । मुझको इसकी प्रखर बुद्धि पर विस्मय होता है । (फिर यकायक खिन्न हो जाता है । धीरे से) मुनन्दा ।

तन्वी—(कालकाचार्य का हाथ पकड़ कर) हां, हां । बड़े बड़े काम करूंगी गुरुजी । मैं उज्जैन चलकर अपनी बहिन का भी पता लगाऊंगी । मैं लड़ाइयां भी लड़ूंगी—जब सब हथियार चलाना सीख लूंगी तब ।

(कालकाचार्य की आँख जल उठती है, एक ओर से मुँह फेरकर दात पीस लेता है ।)

उपवदात—(सहायक सेनापति से) जैसा मैंने कहा है उससे अनुसार इन प्रदेशों का शासन करना ।

(सहायक सेनापति जाता है)

कालकाचार्य—(जैसे समाधि खोली हो) बेटो, तुम युद्धविद्या और शस्त्र-संचालन अवश्य सीखना । बर्बरता के समक्ष साधुता स्त्री की रक्ष नहीं कर पाती । शक्ति अस्त्र है, शक्ति शस्त्र है और वही शिरस्त्राण

तथा ढाल है। स्त्री का वह सर्वस्व है। शक्ति जब साधवी हो जाती है तब उसको सूर्य की प्रखर ज्योति प्राप्त हो जाती है। उसी से अन्तराल की ज्योति जाग्रत होती है। फिर उस पर किसी क्रूर अन्धकार की दृष्टि स्थिर नहीं हो सकती। तुम इस क्रम का अभ्यास करना। कुछ शिक्षा निश्चित निर्धारों से प्राप्त होती है, और कुछ भ्रम के विकल्पों से भी—

तन्वी—मैं समझी नहीं।

उपवदात—यह सब मैं अवगत नहीं कर सका।

(नेपथ्य में गायन वादन होता है)

तन्वी—(प्रसन्न होकर) मैं भी गाऊंगी। सुन्दर गीत गाऊंगी। नाचूंगी भी। (भाग जाती है)

उपवदात — आचार्य, कच्चे फलों के पकाने के प्रयास में, कृमिकीटि लग जाते हैं। आप तन्वी को शास्त्रों की गहनता में कच्चा न पकाकर, अभी जीवन के सरस क्रम में चलने दीजिये। हम शकों की वही परिपाटी है। आइये। आपसे कुछ बात कहूंगा।

कालकाचार्य—(धीमे स्वर में) आं—आं अच्छा।

(दोनों जाते हैं।)

चौथा दृश्य

(स्थान—उज्जैन का बड़ा जनमार्ग। अभिजात और मध्यम श्रेणी की जनता घबराहट में इधर उधर भाग रही है। जिससे जितना बन सकता है अपनी सामग्री लेकर पलायन कर रहा है। केवल निम्न श्रेणी के और दरिद्रजन, भाग दौड़ नहीं कर रहे हैं। भिन्न इत्यादि स्थिर हैं। समय—दिन।)

एक नागरिक—(भागते हुये) सर्वनाश हो इन कापालिकों का। इन्होंने हमको मिटवा दिया।

दूसरा—(भागते हुये, अरे, इस कालक ने शकों को बुलाया, कापालिकों ने नहीं।

(एक श्रमजीवी का प्रवेश)

श्रमजीवी—हम श्रमजीवी कहाँ जायें ? हमारे लिये तो कहीं भी कोई आसरा नहीं। यहीं कहीं खपना पड़ेगा। (जाता है)

(दो बौद्ध भिक्षुक आते हैं)

एक—यह सब व्यर्थ ही भाग बौड़ मचा रहे हैं।

दूसरा—सङ्घ की शरण में आ जावें एक बाल भी बाँका न होगा।

(दोनों शांतिपूर्वक जाते हैं)

(कुछ कापालिकों का प्रवेश। सब सैनिक वेश में हैं। आगे पुरन्दर है वह चमकता हुआ कौशेय झंडा लिये है। भगवां भूमि पर रङ्ग-विरङ्गा मयूर। कापालिकों के गले में पुष्पमाला है। पुरन्दर के गले की माला का सूत्र टूट गया है और टूटी हुई माला गले के पास कपड़े में अटक गई है।)

पुरन्दर - नगर निवासियो ! बन्धुओ !! और देवियो !!! धैर्य मत छोड़ो। हम लोग तुम्हारी रक्षा के लिये शकों का मर्दन करने हेतु बढ़ रहे हैं। हथियार सम्भालो। शत्रु का सामना करो। भगदड़ मत मचाओ। ठहरो ! ढाढ़स रबो। पूर्व पुरुषों के नाम पर कलंक न लगाओ।

(भागने वाले नहीं सुनते वे भागते जाते हैं।)

एक कापालिक—गुरुदेव, ये भगेड़ू वे लोग हैं जो दिन रात यह कहते नहीं अघाते थे कि बलिदान मत करो, हिंसा मत करो, मठ बनाओ और भीख माँगो।

पुरन्दर—अब इन बातों के कहने से लाभ नहीं। (भागते हुये लोगों से) सिर पर पैर रखकर भागने से खड्ग और धनुषबाण हाथ में लेकर लड़ते हुये मरना कहीं अधिक अच्छा है। (लोग नहीं मानते)

शंकर के वीरो, अपनी मयूर पताका को देखो । वह शकों को चबा डालने और निगल जाने के लिये उन्मत्त है । चलो, बढ़ो । हम संख्या में थोड़े होते हुये भी शंकर के त्रिशूल और मयूर का मान रक्खेंगे । शत्रु आर्य जन की पीठ नहीं देख पाता, उसके वक्ष को देखता है । जैसे अङ्गारे में आँच, खड्ग में धार, शूल में तीक्ष्ण अनी, सूर्य रश्मि में तपन, जलपात में शिला को चूर करने की शक्ति और बिजली में क्रोध होती है, उसी प्रकार आर्यजन में वीरता । बढ़ो ! बढ़ो !!

(नेपथ्य में) — ‘राजन्य, घोड़ों पर से उतर पड़िये । जनता का एक भाग रुष्ट होकर आपको मारने के लिये आ रहा है । उतरिये शीघ्र । देवी, आप भी उतरिये ।’

(कापालिकों का प्रस्थान)

(नेपथ्य में ही) — ‘कहाँ गया गर्दभिल्ल ? कहाँ गया वह आलसी विलासी ? अभी घोड़े पर चढ़ा हुआ कहीं लुप्त हो गया । उसी की असावधानी से आज उज्जैन की दुर्गति हो रही है ।

(दूरी पर शकों का धोसा और नगाड़ा बजता है ।)

(नेपथ्य में) — ‘भागो, भागो, शक आ गये ।’

(दूसरी ओर से गर्दभिल्ल और सुनन्दा का दो अङ्गरकों सहित प्रवेश । गर्दभिल्ल घबराया हुआ है । सुनन्दा दृढ़ और निश्चित है । अङ्गरक्त आगे बढ़ जाते हैं । भीड़ अपनी चिंता में व्यस्त आती और भागती जाती है ।)

सुनन्दा — मैं तो वन की ओर जाऊँगी ।

गर्दभिल्ल — वन की ओर ? हाँ, वन की ओर । वहाँ से विदिशा का मार्ग पकड़ना है । ऐसे समय स्त्रियों का साथ बड़ा दुःखदायक होता है । बड़ी रानी और राजकुमार को दूर गाँव में पहले ही भेज दिया है सो अच्छा रहा । तुमको भी पहले ही गाँव में कहीं भेज दिया होता तो — ठीक रहता ।

सुनन्दा — मैं अपनी विधा को जानती हूँ । अपने मार्ग को भी ।

(भागती हुई जनता के कुछ लोग इन दोनों को घेर लेते हैं । ‘मारो मारो यही है हमारा द्रोही राजा’ । शकों का धोसा और नगाड़ा निकट

बजता सुनाई पड़ता है। वह माग कपालिकों को 'वह मार भगाया ध्वजों को।' की पुकार नेपथ्य में होती है। गर्दभिल्ल भयभीत और विचलित हो जाता है।)

सुनन्दा — (आगे आकर) नागरो। मारना है तो मुझको मारो।

(नेपथ्य में भागो, भागो का शब्द होता है। गर्दभिल्ल के अंगरक्षक लौट पड़ते हैं।)

एक अंगरक्षक — (खड्ग खींचकर) क्यों रे नीचो ! लुटेरो !!

सुनन्दा - अपने ही जन हैं मत मारो। चलो, चलो। नागरिको, अपनी रक्षा करो।

(वे नागरिक भाग जाते हैं।)

दूसरा अंगरक्षक — राजन्य, देवी, अब विलम्ब करने से हम सब पकड़े और कतर डाले जायेंगे। चलिये।

(प्रस्थान)

(दूसरी ओर से धोंसा और नगाड़ों इत्यादि बाजों की ध्वनियों के साथ विजयी शकों का प्रवेश। सबसे आगे उपवदात। बीच में कालकाचार्य और वकुल।)

उपवदात — वीर शको, उज्जैन निवासी बचकर भागने न पावें। बन्दी करलो। कापालिकों और शैवों को जहां पाओ मार डालो। लूटो। नगर में आग लगा दो। एक एक शक को दस दस दास और दासियां पुरस्कार में मिलेंगी चाहे उनको अपने पास यहां रखना, चाहे अपने जन्म देश में भेज देना। उज्जैन तुम्हारी और उज्जैन का सम्पूर्ण जन, धन तुम्हारा। केवल राज भवन में आग मत लगाना, क्योंकि उसमें अमूल्य वस्त्र और आभूषण होंगे। राजा को बन्दी कर लेना और सुनन्दा नाम की राज्य कन्या को आदर पूर्वक सुरक्षित रखना। वे राजभवन के बन्दी-गृह में मिलेंगी। समझ में आ गया मेरा आदेश ?

शकपेना—आ गया शाहानुशाह, आ गया महाराज, महाक्षत्रप ।

उपवदात—शकों की जय । सब शकों की जय ।

(वे सब जाते हैं । कालकाचार्य का सिर नीचा है ।)

कालकाचार्य—(रुद्ध स्वर में) वकुल ! वकुल !! मुझको कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा है और न कुछ सुनाई ही पड़ रहा है । (व्यग्रता के साथ) देखो देखो, आतुरता के साथ चलो । सुनन्दा की रक्षा करो, क्योंकि शक-शक—

वकुल—चलिये । चिन्ता मत करिये । शक अपने ही हैं ।

(वे दोनों जाते हैं ।)

पांचवां दृश्य

(स्थान—उज्जैन का राजभवन ऊँचे आसन पर स्वर्ण और रत्नों से जड़ी चौकी । उपवदात सैनिक वंश में मुकुट लगाये बैठा हुआ । नीचे दोनों और अर्द्ध वृत्ताकार में उसके मन्त्री और दलपति भड़कीले वस्त्रों में चौकियों पर बैठे हैं । राज भवन के द्वारों पर द्वारपाल और चोत्रदार हैं । उपवदात के दोनों पार्श्वों में शक जाति की चमर, छत्र व्यंजन और ताम्बूल वाहिकाएँ । उपवदात के ऊपर चांदी सोने का चन्दोबा और चन्दोबे के घेरे पर रेशम की गुत्थियों में मोती की झालरें धूपदानियों में सुगन्धित द्रव्य जल रहे हैं । समय—दो पहर के उपरान्त ।)

उपवदात—सारी भूमि के प्रत्ययों का पदावर्त हो गया और सब कर बिना किसी कृपालुता से लगा दिये महामन्त्री ?

महामन्त्री—हां शाहानुशाह । पत्रकों को भी नहीं छोड़ा गया । उब्रांग, उपरिकर, धान्य, हिरण्य इत्यादि सम्पूर्ण कर लगा दिये गये हैं । खातों में सब लिख लिया गया है । अक्षपटलिकों, कणियों और प्रमुखों को कठोर आदेश दे दिया गया है कि यदि अल्पांश भी आलस्य या उपेक्षा की तो खाल खींच कर भुस भर दिया जायगा । करसंग्रह बहुत कुछ हा

चुका है। आदेय बहुत कम है। दंड विधान पूरी दृढ़ता के साथ व्यवहार में लाया जा रहा है।

उपवदात बालहीक से, दासियों के पहुँच जाने की सूचना आगई ? सब पहुँच गये ?

महामन्त्री—उज्जैन के चौथाई जन दास बना कर भेजे गये थे। उनमें से कुछ स्त्रियाँ और बच्चे मार्ग में मर गये। कुछ बीमार हो गये थे, उनका ले जाना दुस्सह था इसलिये उनको समाप्त कर दिया। जिन स्त्री पुरुषों को यहीं दास बनाकर रख लिया गया वे हमारे शक सैनिकों की सेवा टहल में बहुत सुखी हैं।

उपवदात—किस जनपद के लोग अधिक सिर उठाये हैं।

महामन्त्री—हमारी सीमाओं पर जिसका सम्पर्क यौधेयों और नागों से है वे कुछ उपद्रव कर रहे हैं। हम उन जनपदों के स्त्री, बालकों, ब्राह्मणों और पशुओं का नाश कर रहे हैं। शैव और वैष्णव मन्दिरों को नष्ट कर रहे हैं। काम दृढ़ता पूर्वक चल रहा है।

उपवदात—प्रत्येक ग्राम के लिये एक एक भोगपति नियुक्त कर दो। उसको आज्ञा हो कि जिस ग्राम में एक मनुष्य भी सिर उठावे तो उस ग्राम के अष्टकुलपति, कुलपति, ग्रामिक और प्रमुख की तुरन्त अपने क्षत्रप को सूचना दो। क्षत्रप को आदेश है कि सूचना प्राप्त होते ही वह तुरन्त ऐसे पापी को कटवाकर फिक्का दे, और प्रमुखों के हाथ पर कटवादे।

महामन्त्री—जो आज्ञा।

उपवदात—उत्तर का क्या समाचार है।

महामन्त्री—महाक्षत्रप कुजुल, लियक, पदक, शोडास से उत्तर और पूर्व से यौधेयों और उत्तर—मालवों को घेर रहे हैं। नलपुर का एक व्यक्ति इन्द्रसेन सम्पूर्ण देश में भ्रमण कर करके विद्रोह का झंडा खड़ा करवा रहा है, उसके पीछे दास ने गूढ़ पुरुष और सर्वगत नियुक्त

कर दिये हैं। उसका लोगों में कुछ प्रभाव है। या तो वह शीघ्र ही हमारे किसी चर द्वारा मारा जायगा या वन्दी किया जायगा। आजकल यह इन्द्रसेन विविशा और दशार्ह प्रदेश के जनपदों को भड़काने में लगा हुआ सुना गया है।

उपवदात—हैं ! जहां कहीं भी भगवान बुद्ध और उनके मत प्रचारक महात्माओं के बाल, नख, अस्थियां, भोजन करने के या भिक्षा के पात्र या कोई भी चिन्ह प्राप्त हों, उनके ऊपर आदर और भक्ति के साथ स्तूप तथा चैत्य निर्माण करो। विशाल भवन खड़े करो और उन पर जातकों की कथायें सुन्दर मूर्तियों में उभारो। शिल्पियों को पकड़ो उनको भोजन दो, और, यदि इस पर भी काम करने में आनाकानी करें तो मार डालो। बौद्ध भिक्षुओं के लिये सब प्रकार की सुविधायें दो। नासिक की गुहाओं में लेख उत्कीर्ण करा दिये गये ? विजय का पहला लम्बा डेरा मैंने वहीं डाला था। इसको अब दो वर्ष होते आते हैं।

महामन्त्री—लेख अभी नहीं उत्कीर्ण किये हैं श्रीमान।

उपवदात—अभी तक नहीं उत्कीर्ण किये गये महामन्त्री !!

महामन्त्री—(कांपकर) शहानुशाह, इसमें मेरा ही दोष है जो मैंने अभी तक पत्र पर लेख नहीं बनवा पाया।

उपवदात—नहीं कोई बड़ा अपराध नहीं। मुझको भी स्मरण नहीं रहा।

(कालकाचार्य और वकुल का श्वेत के कोपीन पहिने हुये प्रवेश। परस्पर अभिवादन के उपरान्त उपवदात उनको सम्मान के साथ ऊँचे आसनो पर बिठलाता है।)

उपवदात—आचार्य, आप हमारे धर्म-महामात्र हैं नासिक की त्रिरश्मि नामक गुहा में शकों की विजय के सम्बन्ध में लेख उत्कीर्ण करना है। आप लेख रच दीजिये। एक लेख होगा विजय सम्बन्धी, दूसरा होगा भिक्षुओं को एक गुहा प्रदान के विषय में।

कालकाचार्य—संस्कृत में या प्राकृत में । शहानुशाह ?

उषवदात—मैं समझता हूँ धर्म—महामात्र जी, कि दोनों के मिश्रण से लेख बनाया जाय । प्राकृत यहां साधारण जन बोलते और लिखते हैं संस्कृति यहां के अभिजातों और विद्वानों की भाषा है ।

कालकाचार्य—सुन्दर कल्पना है शहानुशाह ! मैं अभी लेख लिख कर महामंत्री को दिये देता हूँ । एक रहेगा—अपकी हुँकारमात्र से मालव पलायन कर गये जब आप उत्तमभद्रों की रक्षा के लिये आये थे, और दूसरे में भिक्षुओं को गुहा प्रदान कर देने की बात होगी ।

उषवदात—धन्यवाद आचार्य ।

महामन्त्री—मैं तुरन्त दोनों लेख उत्कीर्ण करा दूँगा ।

उषवदात—उस आज्ञा के प्रचार का क्या फल हुआ, जिसमें मैंने घोषित किया था कि जनता के सब लोग अपने को शक कहे कोई भी अपने को आर्य न कहे और कोई भी यज्ञ न करे ।

महामन्त्री—उस आज्ञा का पालन हो रहा है शहानुशाह । जो आज्ञा पालन नहीं करता, वह मार डाला जाता है । केवल बौद्ध और जैन अवध्य है ।

(एक व्यापारी को दो सैनिक घसीटते हुये लाते हैं । उनका दलपति महामन्त्री के कान में कुछ कहता है ।)

उषवदात—यह कौन है ? इसका क्या अपराध है ?

महामंत्री—शाहानुशाह यह इस नगर का बहुत बड़ा सेठ है । इसके पास लाखों द्रव्य है । स्वर्ण रत्नादि । यह अपने सिर के बालों के जूँ पकड़ पकड़ कर मारते पाया गया है । मार्ग से लगे हुये चबूतरे पर दिन बहाड़े इस कुकर्म को कर रहा था यह दुष्ट !

उषवदात—तुम कौन हो जी ?

सेठ—महाराजाधिराज, मैं यहां का एक दीन सेठ हूँ ! पुराना घराना है । गण का सदस्य रहा हूँ । अपने को शक कहता हूँ ।

उषवदात—बालों के जूँ बीन-बीन कर मारने का अपराध किया ? शक हो या नहीं इससे हमको इस समय प्रयोजन नहीं है ।

सेठ—शाहानुशाह, पहले मेरे घर भर में किसी के बालों में जूँ नहीं थे, जब बाहर से आये हुये अपने नये ग्राहकों में मिलने जुलने और बैठने उठने लगा तब से न जाने इनके दल के दल मेरे घर में क्यों और कैसे घुस पड़े ।

उषवदात—अर्थात् यह जूँ तुमको हमारे शकों ने दिये !!! यही न ?

सेठ—जी—जी—जी—महाराजाधिराज, मैं यह नहीं कहता । मैंने यह कहाँ कहा ।

उषवदात—अच्छा कितने जूँ मारे तुमने ।

सेठ—महाराजाधिराज, शाहानुशाह, जब बहुत पीड़ित हो गया तब केवल तीन जूँ मारे । अब भी बालों में बहुत है । मरा जा रहा हूँ उनके काटने से । खुजलाते खुजलाते थक गया हूँ ।

कालकाचार्य—भगवन ! जूँ मारे इसने !! महापाप !!! महा अपराध !!!!!

उषवदात—इतनी क्रूरता ! इतनी निर्दयता !! अच्छा सेठ हम तुम्हारा सम्पूर्ण बोझ हलका कर देते हैं । धर्म महामात्र, इस अपराध का क्या दण्ड है ?

कालकाचार्य—पूरी सम्पत्ति अपहृत करके राजकोष में ले ली जावे ।

सेठ—मरा, मरा, मैं मरा ! मैं शक हो गया हूँ, दीनबन्धु । मैं शक हूँ ।

उषवदात—उस से कोई अन्तर नहीं पड़ता । मैं तुम्हारे ऊपर बहुत दया करके प्राण वध का दण्ड नहीं देता हूँ परन्तु तुम्हारी सम्पूर्ण सम्पत्ति अपहृत करता हूँ । आचार्य, आधा सम्पत्ति राजकोष में जायगी

और आधी की लागत से एक विशाल बिहार बनाया जायगा । ले जाओ इसको यहां से ।

(मेठ को सैनिक घसीट ले जाते हैं । वह रोता किलपता जाता है ।)

उषवदात— राजकुमारी सुनन्दा का पता चला महामन्त्री ?

महामन्त्री—(कालकाचार्य की ओर कनखियों देखकर) हां शाहानुशाह, वे विदीशा के जङ्गलों में कहीं गर्दभिल्ल के साथ हैं ।

कालकाचार्य—(ज़ोभ को संयत करके) सभा में इस प्रसङ्ग पर कुछ चर्चा नहीं करना चाहता हूँ ।

उषवदात— इतना तो बतला ही दीजिये कि अब क्या किया जाय आचार्य ?

कालकाचार्य—(झड़ककर) मेरे मन में अब और कुछ नहीं है । मैं शीघ्र ही धर्म प्रचार के कार्य निमित्त बाहर निकल जाऊंगा । (गिरे हुये स्वर में) यदि मिल गई तो धर्म में फिर मे दीक्षित करूंगा ।

उषवदात — (पिछली बात को अनसुनी करके) ठीक भी है आचार्य गर्दभिल्ल को यदि पाऊँ तो अवश्य मरवा डालूँ ।

कालकाचार्य—(स्वन्न स्वर में) इस विषय पर मैं अब एक शब्द भी नहीं कहना सुनना चाहता हूँ ।

वकुल — (दृढ़ता के साथ) निबट लेगे हम इस समस्या से ।

(चार सैनिक एक कापालिक को बांधे हुये लाते हैं । उनका नायक महामन्त्री के कान में कुछ कहता है)

उषवदात—यह कौन है ?

महामन्त्री—कापालिक है, अश्वदाता ।

उषवदात—कापालिक !

कालकाचार्य—कापालिक !!!

वकुल—कापालिक ! कापालिक !! हे भगवान !!!

उषवदात—इसको क्यों ले आये ?

महामंत्री—यह अपने कपड़े के छोर में मांस बांधे हुये नगर के भीतर पकड़ा गया है ।

कालकाचार्य—मांस बांधे हुये !!!

उषवदात—क्यों रे पापी, मांस बांधे था ? काहे का मांस था ?

कापालिक—(निर्भक्ता के साथ) खाने को गाँठ में कुछ था नहीं । भीख हम मांगते नहीं । पत्थर के ढेले से एक कपोत मार लिया । खाने के लिये उसके मांस को बांध लाये । वस्त्र से रक्त निकलता देख कर सैनिकों ने पकड़ लिया और मुझको मारा । विवश हो गया अन्यथा दो चार घप मैं भी दे देता ।

उषवदात—इसका दण्ड धर्ममहामात्र ?

कालकाचार्य—प्राण वध । इससे कम और कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता । नगर के भीतर मांस लाने से सम्पूर्ण उज्जैन नगरी अपवित्र हो गई है । वह इसके प्राणवध से ही शुद्ध हो सकेगी ।

उषवदात—ले जाओ इसको और तुरन्त इसका वध करो ।

कापालिक करदो मेरा वध । शंकर मुझ सदृश करोड़ों इस भूमि में उत्पन्न करेंगे जो शकों को निर्वेश करके रहेंगे ।

(कापालिक को सैनिक घसीट कर ले जाते हैं)

कालकाचार्य—शाहानुशाह, अब मैं अपने पद को त्यागता हूँ । प्रहिंसा धर्म के प्रचार के लिये मैं मुराष्ट्र इत्यादि प्रदेशों में बिचरण करूँगा । यहाँ नहीं रहूँगा ।

उषवदात—आपकी कमी हमको बहुत खलेगी ।

कालकाचार्य—मेरा निश्चय है शाहानुशाह ।

उषवदात—अच्छा, आचार्य, खेब के साथ आपको बिदा बेनी पड़ेगी । क्या आप वकुल को भी साथ ले जायेंगे ।

कालकाचार्य—न, मैं अकेला जाऊँगा ! वकुल आपके सम्पर्क में रहेगा । वह धर्म सम्बन्धी विषयों में आपकी सहायता करता रहेगा ।

वकुल—(हाथ जोड़कर) गुरुदेव !

कालकाचार्य—तुम यहीं रहो । गर्दभिल्ल को ढूँढ़ने में उषवदात की सहायता करो । मुनन्दा मिले तो, उसको मेरे निकट कर जाना ।

(कालकाचार्य जाता है । द्वार तक उषवदाता इत्यादि उसको पहुँचाने हैं)

उषवदात—(आसन ग्रहण करने पर) वकुल जी, मैं आपको धर्म महामात्र बना देता, परन्तु आपकी आयु मन में संकोच उत्पन्न करती है ।

वकुल—इस काम में मेरा चित्त भी नहीं लगेगा । सर्वगत का काम करने की अभिलाषा मुझको अवश्य है । मैं यहां की भौगोलिक स्थिति से परिचित हूँ ।

उषवदात—हो भी तुम उसके उपयुक्त । मैं हर्षपूर्वक तुमको अपना प्रधान सर्वगत इसी समय नियुक्त करता हूँ । तुम में यवनों की चतुरता और यहां के लोगों की कुशल बुद्धि है । अनेक भाषाओं के जानकार हो । गर्दभिल्ल, इन्द्रसेन, विदिशा का रामचन्द्र नाग इत्यादि मेरे परम शत्रु हैं । इनको मारो या पकड़ो या जो चाहो जिस प्रकार करो और समय समय पर मुझको अपनी गति विधि का परिचय देते रहो ।

वकुल—एकान्त में कुछ विनय करना चाहता हूँ ,

उषवदात—अवश्य । सर्वगत का काम ही एकान्त में बात करने का है । मेरे निकट आओ । (वकुल आ जाता है) कहो बिना संकोच के कहो । सर्वगत अवध्य और अदण्डनीय है ।

वकुल—(धीरे से) अनेक वर्षों के परिश्रम से कुमारी तन्वी गायन वादन और नृत्य में अत्यन्त कुशल हो गई है । संस्कृत, प्राकृत और जन-

पदों की बोलियों का उनको ज्ञान है। उनकी इच्छा इस कार्य के करने की है। वे समर्थ हैं। आपकी अनुमति हो तो मैं उनको साथ लेता जाऊँ।

उषवदात—मैं सहमत हूँ। महाक्षत्रप भूमक क्या कहेंगे, मैं नहीं कह सकता। सुनता हूँ कि वे कपिशा से भी आगे निकल गये हैं। न मालूम कब लौटें—और लौटें भी या नहीं। क्या तन्वी तुम्हारे साथ विवाह करेगी! हम लोग वर्ण भेद जात पांत कुछ नहीं मानते। तुम सुन्दर हो और कुशल हो। भूमक कोई अपेक्षा नहीं करेंगे। क्या वह तुम से प्रेम करती है?

वकुल—(संकोच के साथ) अभी तो ऐसा कुछ नहीं है। उनका मुझ पर स्नेह है, केवल इतना जानता हूँ।

उषवदात—वयस्क हो गई है। उसको अपने वर के चुनने का अधिकार हमारी प्रथा के अनुसार है। मैं उसको सर्वगत का काम करने की अनुमति देता हूँ। परन्तु उसकी रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर रहेगा।

(पीछे की खिड़की से तन्वी का प्रवेश ।)

तन्वी—(धीरे से) रक्षा तो शाहानुशाह, मैं अपनी कर लूँगी। मैं शक कन्या हूँ। सब तरह के हथियारों का प्रयोग जानती हूँ। जङ्गलों पहाड़ों, नदियों, कठोर परिस्थितियों और जटिल समस्याओं में घसने का मुझको व्यसन है। मैंने इस इन्द्रसेन के विषय में बहुत सुना है। यदि मैं इसको मार सकी या किसी तरह वश में कर सकी और आपके चरणों में उसको ला सकी, तो मेरा जन्म सफल होगा। आप मुझको आशीर्वाद दीजिये।

उषवदात—जियो बेटी, सफल होओ अपने कार्य में। सहायता के लिये जब जितनी सेना चाहोगी, तुरन्त तुम्हारे पास पहुँचेगी।

तन्वी—अनुग्रहीत हुई ।

(वकुल और तन्वी एक ओर जाते हैं ।)

तन्वी—हम लोगों को यहाँ से शीघ्र वेश बदल कर चल देना चाहिये ।

वकुल—बहुत अच्छा ।

(वकुल और तन्वी का प्रथान)

उषवदात—आज का काम समाप्त हुआ महामन्त्री, अब ।

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—विदिशा में कुछ दूरी पर उदयगिरि की गुहायें । बेतवा की एक घार के पास विदिशा और नदी, नालों, पहाड़ियों तथा हरे भरे वृक्षों की पृष्ठ भूमि में उदयगिरि की गुहायें हैं । एक गुहा के सामने कुछ दूर-स्थित एक टीले की स्वच्छ और चौड़ी चकली शिला पर इन्द्रसेन बैठा हुआ है । निकट ही विदिशा का राजा रामचन्द्र नाग । रामचन्द्र नाग की आयु लगभग पचास वर्ष की है । वह दृढ़ और बलिष्ठ शरीर का तेजस्वी व्यक्ति है । त्रिपुण्ड्र लगाये हुये हैं । इन्द्रसेन के भूमध्य में केशर का बिंदु । दोनों योद्धा वेष में हैं । सिर पर छोटे और कुछ ही भड़कीले किरीट बाँधे हैं । सरलता ने उन दोनों के तेज को और भी दीप्त कर दिया है । इन्द्रसेन की आयु नौ वर्ष आगे निकल गई है, परन्तु उसकी सुरूपता अभिन्न है । केवल मूँहें कुछ बड़ गई हैं । बहुत यात्रा और अनवरत प्रयत्न के कारण वह कुछ सांवल्ला पड़ गया है । समय संध्या के उपरान्त ऋतु मधु मास का प्रारम्भ]

रामचन्द्रनाग—आर्य जब ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक ही परमात्मा की भिन्न-भिन्न शक्तियों के पृथक् पृथक् नाम हैं, तब विष्णु की अर्चना का विशेष हठ आप क्यों करते हैं ? विज्ञान वह है जिसे हम जानते हैं, दर्शन वह है, जिसे हम नहीं जानते ।

इन्द्रसेन—सहज ही वरदान देने वाले शङ्कर, पालनपोषण करने वाले होते हुये भी वास्तव में रुद्र हैं। दुष्टों और पीड़ितों का विनाश करने के लिये उनको अपना अत्यन्त विशाल कर्म, ताण्डव नृत्य करना पड़ता है। उनकी संहार-वृत्ति में नये उद्भव, नवीन उत्पत्ति के बीज रहते हैं, यह ठीक है, परन्तु हमारे लिये अकेला रुद्र पर्याप्त नहीं है। हमको सत्य और सुन्दर भी चाहिये—रुद्र का शिवरूप। नाश करने में समय कम लगता है, सौन्दर्य और कल्याण के सृजन के लिये बहुत समय चाहिये। इसलिये परमात्मा का जो रूप इस कल्याण कार्य के लिये अधिक व्यापक हो सके, उसकी ओर विशेष ध्यान देना ठीक रहेगा। इस समय तो इसकी ओर भी आवश्यकता है।

रामचन्द्र—इस समय तो रुद्र के ताण्डव की अत्यन्त आवश्यकता है। शकों ने लगभग सम्पूर्ण आर्यावर्त को पैरों तले रोंद रखा है। मालव, नाग, आरक और बौद्ध भद्र भी जो कालक की आड़ में शकों की आंधी को मध्यदेश में ले आये, महाकष्ट में हैं। वर्णों का उच्छेदन हो रहा है। वर्णशंकर बढ़ते चले जाते हैं। आतंक में आकर अनेक आर्य अपने को शक तक कहने लगे हैं ! वेदों का पढ़ना पढ़ाना और यज्ञादि देश के एक बड़े भाग में निषिद्ध कर दिये गये हैं। त्यागी विद्वान् ब्राह्मणों को कोई आंशिक आदर भी नहीं देता। छोटे छोटे अपराधों पर लोगों को प्राणवध का दण्ड देने की प्रथायें चला दी गई हैं। जनता की भूमि का स्वामी राजा बनाया जा रहा है। पुराने नामों के जन सेवकों को नये अत्याचारी अधिकारों से विभूषित किया जा रहा है। जू, मशक, और खटमल की रक्षा के मिस आर्यों के रक्त की नदियाँ बहाई जा रही हैं। अभिजातों, कुलीनों और तपस्वियों को अपदस्थ करने के लिये, पंचमों और केवटों को शकों ने क्षत्रिय बना दिया है ! मन्दिरों को ध्वस्त कर करके एडुकों की पूजा कराई जा रही है !! देव, यदि यह समय भी रुद्र शंकर के ताण्डव का नहीं है तो क्या वह समय तब आयगा जब आर्य नाम तक का संसार से लोप हो जायगा।

इन्द्रसेन—भक्ति और पुरुषार्थ का, तपस्या और जीवन का, त्याग और भोग का, विनय महिमा का, सौन्दर्य और तेज का, बुद्धि और बल का, विशालता और स्फूर्ति का, कोमलता और दृढ़ता का, क्षमा और दण्ड का, क्रिया और विचार का, शान्ति और सक्रियता का समन्वय वरुण धर्म है। शकों को पराजित करके क्या हम उनके बाल बच्चों का बध करेंगे ? कभी नहीं, राजन् । यदि वे हमारी संस्कृति के होकर हमारे देश में रहेंगे तो उनकी उसी प्रकार रक्षा की जायगी जैसी आर्य जनों की की जाती है ।

रामचन्द्र—आप यह कहते हैं । और वे लोग हमारे देश के रक्त से बिन रात, प्रत्येक क्षण, तर्पण करते चले जा रहे हैं !

इन्द्रसेन—इसका निवारण करने के लिये विष्णु के एक हाथ में गदा है । संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने के लिये और दुर्वृत्तियों का दमन करने के लिये दूसरे हाथ में चक्र है । स्पष्ट स्वर में नीति और शौर्य के मेल की घोषणा करके जन को जगाने के लिये हाथ में शङ्ख है और विश्व में, सर्वत्र सांवली सलोनी स्मितमयी हरी दूब बढ़ाने और जीवन को पुरस्कार तथा वरदान देने के लिये चौथे हाथ में कमल है ।

रामचन्द्र—फिर विष्णु के सामने घांघरा, घुंघरू और ओढ़नी पहिन कर पुरुष नाच क्यों उठे हैं ?

इन्द्रसेन—यह भक्ति का बीभत्स है । भक्ति का वास्तविक रूप तन्मयता है, तादृशता है । कुछ लोग शङ्ख चक्र और गदा को त्याग कर केवल कमल की पूजा में लीन हो जाते हैं । यह उनकी भूल है । भक्ति और पुरुषार्थ का, हंस और मयूर का, मेल होना चाहिये ।

रामचन्द्र—मैं समझा नहीं देव ।

इन्द्रसेन—हंस, बुद्धि-विवेक, प्रजा, मेधा, भक्ति और संस्कृत का प्रतीक है; मयूर, तेज, बल और पराक्रम का । दोनों का समन्वय ही आर्य संस्कृति है । जीवन और परलोक—दोनों की प्राप्ति का एक मात्र साधन ।

रामचन्द्र—कापालिकों ने प्रण किया है कि वे शकों के मुण्डों की माला पहिनेंगे और उनके शरीर की राख को अपने तन में मलेंगे। क्या वह अनुचित है।

इन्द्रसेन—इससे बढ़कर अनुचित और क्या होगा ? जब शकों की पराजय हो जायगी और संस्कृति फिर अपने प्रबल मनोहर रूप में व्याप्त होने को होगी तब ये कापालिक किसकी मुण्डमाला पहिनेंगे ? किसकी भस्म शरीर पर लपेटेंगे ?

रामचन्द्र—मैं माने लेता हूँ कि कापालिक उचित नहीं कर रहे हैं। परन्तु आप जिस समबन्ध की बात कर रहे हैं वह जनता की समझ में कैसे आवेगा ?

इन्द्रसेन—हमारे समाज में अतीत का दिया हुआ यदि बहुत सा प्राह्य है तो बहुत सा अप्राह्य भी है। एक समय में जो आचार विचार मानव की उन्नति में साधक हुए थे, वे आज उसके विकास में बाधक हो रहे हैं। मानव बढ़ गया और वे अचार विचार संकीर्ण हो गये हैं, वे मानव को कस रहे हैं, और उसको दुर्बल बना रहे हैं। अब वे अप्राह्य है। हम लोग अपने नित्य के जीवन और व्यवहार से इसको स्पष्ट कर सकते हैं। जनता चेतन है। जनता के सचेत विकास का आचार अनुगमन करता है। हमारी बात उसकी समझ में शीघ्र आ जायगी।

रामचन्द्र—जनता तो नये नये मन्दिर और नई नई मूर्तियां बना उठेगी।

इन्द्रसेन—ठीक है, आर्य। आप अपने वंश में सर्पों की ही पूजा को देखो। एक समय में सर्प रक्षा और अक्रमण का प्रतीक था। इसी-लिये वह अपनाया गया, परन्तु कालान्तर में प्रतीक का अर्थ और अभिप्राय लोप भूल गये और उसके रूप को पूज उठे !

रामचन्द्र—किसी दिन आपके हंस मयूर की भी यही दशा होगी बेव ।

इन्द्रसेन—न होगी आर्य । ये दोनों पक्षी सुन्दर है । उनकी कल्पना नई है और मैं समन्वय का प्रयोजन सीधा और स्पष्ट समझता फिरता हूँ, इसलिये इनके लिये मन्दिर नहीं बनाये जायेंगे वे केवल हमारी पताका पर रहेंगे जिसके नीचे समस्त आर्यावर्त शकों से लड़ रहा है, लड़ेगा, और उनको पराजित करेगा । फिर हंस-मयूर आर्यों के विवेक में समा जायेंगे ।

रामचन्द्र—आन्ध्रनरेश शातकर्णि ने भी मान लिया हंस-मयूर को ? उसकी ध्वजा पर तो गरुड़ है ।

इन्द्रसेन—गरुड़ विष्णु का वाहन है, इसलिये आदरणीय है, परन्तु गरुड़ और मयूर परस्पर कलह कर सकते हैं, इसलिये हंस और मयूर हमारे लिये अधिक शोभन है । आप तो हंस-मयूर के तत्व को समझते हैं । आप तो उसको मानते हैं ?

रामचन्द्र—हम नागजन अपने शंकर की मूर्ति उष्णीष में बाधेंगे और हंस मयूरी भंडे के नीचे लड़ेंगे । अपनी गङ्गा यमुना और देशों को अत्याचारी शकों से मुक्त करना चाहते हैं । हम सदा से गणतन्त्रों के सहायक तथा समर्थक होते चले आये हैं । (मुस्काकर) हम हंस-मयूर के तत्व को समझ सकें या न समझ सकें, परन्तु उसको मानेंगे अवश्य ।

इन्द्रसेन—आर्य, मैं आपको बधाई देता हूँ । हम अवश्य अपने देश को मुक्त करेंगे । कृष्णन्तो विश्वमार्यम् । हम भगवान की चतुर्भुजी मूर्ति को हृदय में आसीन करके जब चार हाथ लम्बी प्रत्यंचा वाले धनुष पर छः हाथ लम्बे वारणों को संस्कृति और स्वाधीनता विनाशक अत्याचारी शकों पर चलायेंगे तब कहेंगे गणतन्त्रों की जय ! कला और शौर्य अनुरक्त विदिशा के नागों की जय !!

रामचन्द्र—(खड़े होकर) मालव गौरव, हम लोगों को आप बड़ पायेंगे और कोई आदेश, देव ? कुछ समय उपरान्त उदयगिरि की उस गुहा में जो भीतर से बहुत विरतुत है, थोड़े से नृत्य और गायन की अनोरञ्जन-योजना है ।

इन्द्रसेन—मैं सब कुछ कह चुका। केवल एक बात रह गई है। वह यह कि शातकर्णि-यज्ञों का पक्षपाती होने के कारण स्वयं अदवमेध करना चाहता है। उसको चक्रवर्ती कहलाने का मोह है वह और कुछ नहीं चाहता—न सोना—चांदी और किसी जनपद में कोई अधिकार। उसको इस महात्वाकांक्ष में आप बाधक न होना। समय की याचना है।

रामचन्द्र—राजा का अभिषेक केवल जन-गण के स्वराज्य के लिये होता है। शातकर्णि स्वराट् पद से सन्तुष्ट न रहकर सम्राट बनना चाहता है। गण-तन्त्र इस लोभ को असम्भव कर देने की समर्थता रखता है। (आवे क्षण सोचकर) परन्तु समय असाधारण व्याधि का है। हम लोग कोई बाधा नहीं डालेंगे। और आगे का कार्य—क्रम देव ?

इन्द्रसेन—शातकर्णि सुराष्ट्र की दिशा में शकों को दबायगा। यौधेय उत्तर दिशा में, आप और मैं मालवों को लेकर दक्षिण और पूर्व से। जान पड़ता है कि अपनी सेना का युद्ध नर्मदा के निकट कहीं त्रिपुरी के आसपास होगा। शकों के दमन में हमारे काण्वजन भी सहायक होंगे।

रामचन्द्र—अब उस मनोरञ्जन के लिये चलिये। अप्सरा द्वारा शुकदेव की तपस्या को डिगाने का रूपक किया जा रहा है। मंजुलिका नाम की एक प्रसिद्ध नर्तकी और गायिका अप्सरा की भूमिका साधेगी और श्री कण्ठ नाम का एक गुणवन्त शुकदेव का अभिनय करेगा।

(दोनों टेक पर से उतरते हैं। कन्दरा के द्वार पर जाते हैं। पर्दा उठता है। सामने कन्दरा के प्रेक्षणगृह में इधर उधर सुन्दर चित्र बने हैं। और खम्भों तथा बडे़रियों पर विविध मूर्तियां। गृह-चित्र की योजना और कारीगरी का श्रेष्ठ नमूना। शुकदेव के रूप में व्याकुल ध्यान मग्न बैठा है। तन्वी अब अपने पूर्ण यौवन में है और बहुत सजीली वेष-भूषा में। गायन के साथ नृत्य कर रही है। इन्द्रसेन और रामचन्द्र नाग प्रेक्षण-शाला में आगे जा बैठते हैं। शाला में चुने हुये दर्शक पहले से बैठे हुये हैं। गुहा में दीपों का प्रचुर प्रकाश है।)

❀ गीत ❀

(राग-देश में)

मैं वसन्त की दूती तुमसे मांग रही इतना वरदान ।
पलक मात्र के लिये त्याग दो इस मुद्रा का असमय ध्यान ॥

कलियों की पहली मुस्कान,
भोरे की गरबीली तान,
सुभनों का मधुमय रसपान,
सौरभ का पदरज संधान,

ललक ललक कर चाह रहे हैं इस बन में थोड़ा सा मान ।
मैं वसन्त की दूती तुमसे मांग रही इतना वरदान ॥

तन्वी—(स्नेहसिक्त स्वर में) प्राणों के प्यारे ! वसन्त के सौरभ !!
मनकी फुलवारी के भ्रमर !!! सुन्दर शुकदेव !

(वकुल एक क्षण के लिए आँख खोलकर फिर बन्द कर लेता है)

इन्द्रसेन—(रामचन्द्र से धीरे से) शुकदेव बहुत सुन्दर पात्र है,
और अप्सरा तो वास्तव में अप्सरा है । कहां के हैं ये लोग ?

रामचन्द्र—कुछ समय में इधर ही रहते हैं । वैसे सुगण्ड के
निवासी हैं । शकों के आक्रमण के कारण घर द्वार छोड़ कर भाग
आये हैं ।

इन्द्रसेन—ललितकलाओं के कुचलने वाले शकों का नास हंस-मयूर
शीघ्र करेगा ('हंसमयूर' शब्द का उच्चारण तीव्रता के साथ निकल जाता
है । उसको सुनकर तन्वी कुछ चौकन्नी सी होती है । फिर पूर्ववत् नाचने
गाने लगती है । परन्तु बीच बीच में इन्द्रसेन को आँख गड़ा कर देखती
है । वह पहले अध्यानमग्न शुकदेव से कुछ दूर नाचती है, फिर निकट
आ जाती है । वकुल एक क्षण के लिये उसकी ओर देखता है फिर ध्यान-
मग्न हो जाता है ।

इन्द्रसेन—(धीरे से) शुकदेव का भी अभिनय मनोहर हो रहा है और अप्सरा तो ललित कला का मानो अवतार ही हैं। दोनों परस्पर कौन हैं ? क्या पति-पत्नी ?

रामचन्द्र—सुनता हूँ—भाई बहिन का नाता है। अप्सरा अविवाहित है।

(थोड़ी देर में अभिनय समाप्त होता है और वे दोनों दर्शकों के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। तन्वी की दृष्टि एक क्षण के लिये इन्द्रसेन पर टिक जाती है।)

इन्द्रसेन—सुभको विविशा से शीघ्र चला जाना है, नहीं तो एकाध दिन तुम लोगों का अभिनय और देखता। शकों की शक्ति का नाश करने के उपरान्त कवश्य एक दिन तुम्हारा अभिनय अधिक समय तक देखूंगा। तुम लोग हंस मयूर मत का प्रचार अपनी कला द्वारा बड़ी कुशलता के साथ कर सकते हो।

रामचन्द्र—मैं तुम लोगों को समझाऊंगा हंस-मयूर मत क्या है। यह आर्यों की रक्षा की पताका, विष्णु का शंखनाद और शदाशिव का त्रिशूल है। बोलो हंस-मयूर की जय। शदाशिव की जय।

(सग लोग जय जयकार करते हैं। तन्वी संकेतपूर्ण दृष्टि से एक क्षण वकुल को देखती है।)

इन्द्रसेन—मन्जुलिके, यदि तुम श्रीकंठ की ओर तपस्या के समय, जब इन्होंने आँख खोली, इस प्रकार देखती तो कह नहीं सकता इनकी तपस्या रहती या जाती।

(तन्वी मुस्करा कर नमस्कार करती है।)

तन्वी—मैं अनुगृहीत हुई, देव।

(सब दर्शक कंदरा के बाहर टेक वाले मैदान में आजाते हैं। कंदरा का पर्दा गिरता है। इसके उपरान्त सब दर्शकों का प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[स्थान—रहाड़ी जंगल मार्ग । आगे आगे सामान ढोने वाले पीछे गर्दभिल्ल और मुनन्दा । गर्दभिल्ल दुर्बल हो गया है । कुछ भुका हुआ । मुनन्दा वैसे स्वस्थ शांत है । बोझ ढोने वाले आगे निकल जाते हैं । समय दिन]

गर्दभिल्ल—न जाने त्रिपुरी और कितनी दूर है । मैं तो बहुत थक गया हूँ ।

मुनन्दा—रोगी और निर्बल की सहायता मैं कर सकती हूँ ।

गर्दभिल्ल—(हांफ को संभालने के लिये ठहर कर) मालव जन मुझको कहीं चाहते शक मुझसे घृणा करते हैं । शंभू और वैष्णव मुझको पापी समझते हैं और बौद्ध निकम्मा । जैन तो मुझको नरक का कीड़ा कहते से नहीं हिचकते । तुम अपनी पीठ पर मेरा निरर्थक बोझ ढोने की बात कहती हो मुनन्दा !

मुनन्दा—मैं अपने अत्याचारी की भी सहायता करने के लिये तैयार हूँ ।

गर्दभिल्ल—मुनन्दा, मैंने तुमको क्या से क्या कर दिया ! परिताप के मारे जलता रहता हूँ । ओह मुझसा पापी—

मुनन्दा—अब भी सुधरने का समय है ।

गर्दभिल्ल—जो बात वासना नहीं सिखला सकी उसको विपद ने स्पष्ट दिखला दिया ।

मुनन्दा—मैं आर्य नारी हूँ, और धर्म है मेरा आर्य संस्कृति की रक्षा करना ।

गर्दभिल्ल—(सीधा खड़ा होकर) देवी, मैं तुम्हारी दया का भी पात्र नहीं । त्रिपुरी में आन्ध्र नरेश के प्रभाव में काण्व राजा का शासन है । वहां चलकर अपने को सुधारूंगा; अवश्य ।

मुनन्दा—(मुस्कराकर) स्वस्ति ।

गर्दभिल्ल—स्वस्ति, स्वस्ति । देवी, आज मैं इस स्वस्ति में वज्र के बल का रूप देख रहा हूँ ।
(प्रस्थान)

(दूसरी ओर से वकुल और तन्वी का धीरे धीरे प्रवेश । इनका सामान दोने वाले एक ओर बैठ जाते हैं । तन्वी और वकुल में धीरे धीरे बातें होती हैं ।)

वकुल—सर्वगत का काम कितना दुष्कर है इसको महाक्षत्रप अनुभव नहीं कर सकते ।

तन्वी—सर्वगत का फिर अर्थ ही क्या रहता ? सर्वगत पाटल की पंखुड़ियों के साथ तो खेलता नहीं है ।

वकुल—तब चलो आगे । विपदों का सामना करने में हम में से कोई नहीं हिचकता ?

तन्वी—मैं सोचती हूँ और आगे जाना व्यर्थ है । गर्दभिल्ल हाथ से निकल गया । परन्तु अब उसमें विष नहीं रहा । एक बार मन चाहता था हथियार या विष से मार कर समाप्त करदो और मुनन्दा को ले चलो । फिर सोचा व्यर्थ है । जो समय त्रिपुरी में व्यय किया जाने को है, उसो वेत्रवती और सिन्धु के वनों और नगरों में काम में लाओ । इन्द्रसेन कहीं अधिक भयंकर है । भारत में शकों का इस समय, सबसे बड़ा वैरी वही है ।

वकुल—गर्दभिल्ल को नहीं मारना है तो मुनन्दा को ले चलना निष्प्रयोजन है ।

तन्वी—आचार्य की बात का स्मरण है ?

वकुल—स्मरण है, परन्तु अपना अधिक स्पष्ट लक्ष्य इन्द्रसेन है ।

तन्वी—तब लौट चलो । इन्द्रसेन कहीं बड़ा लक्ष्य है । उस रात उदयगिरि की कन्दिरा में वह मेरे नाचने गाने पर सुग्ध सा दिखता था । सहज ही हाथ पड़ जाने की सम्भावना है ।

वकुल—उस रात तो तुमने गुहा को प्रदीप्त कर दिया मञ्जुलिके ।
ग्राह मन की मन में रही—मुझको आँख न खोलने और मूर्ख मा बना
बैठा रहने का अभिनय करना पड़ा ! केवल एक बार आँख खोल पाई ।
तुम्हारा उस दिन का रूप भुलाये नहीं भूलता ।

तन्वा—अभिनेता और अभिनेत्रियों का रूप क्या ? सच कृतिम ?
नितान्त छल ।

वकुल—मैं उस समय सचमुच सोच रहा था कि मञ्जुलिका मुझको
मना रही है, मैं रूठा हुआ हूँ और वह प्रेम और बान्ध्या का अमृत मेरे
ऊपर उड़ेल रही है । मैं आँखें मूंदे हुये था, परन्तु उस घने अन्धकार में
उजाले की कितनी लौ बार बार मुझको दिखलाई पड़ रही थी ! नम प्रेम
में मतवाली थीं, मेरे प्रेम को उकसाने के लिये चनौतियों पर चनौतियाँ
दे रही थीं । मैं तुम्हारे रूप और रस की कल्पना कर कर के मन ममोस
ममोस कर रह रह जाता था ।

तन्वी—मैं चाहती थी कि हमारे दर्शक मन ममोस ममोस कर रह
जायें, कदाचित् मैं सफल भी हुई । इन्द्रसेन पर मेरा प्रभाव अवश्य पड़ा
होगा ।

वकुल—मैं अपनी बात कह रहा था । मैं चाहता था कि वह ध्यान
जो उस पत्थर के टुकड़े रामचन्द्र शैव को दिया जा रहा था और जो
उस रंगीले वंष्णव इन्द्रसेन को, वह मुझको मिलता । मैं कितना कृतार्थ
होता ।

तन्वी—(साश्चर्य) नाटक करने वालियों में प्रेम ! तुम क्या पागल
हो वकुल ! अभिनेत्रियाँ प्रेम करने लगे तो हुआ उनका व्यवसाय समाप्त
और कला का हुआ विनाश । प्रेम तो उनके साथ मूर्ख दर्शक करते हैं जो
आने हैं नाटकशाला में मनोरञ्जन के लिये और लौटते हैं साथ लेकर
रत्नादि । तुमको रंगमन्च पर 'प्राणों से प्यारे' 'बसंत के सौरभ' 'मन की
फुलवारी के भ्रमर, कहने से दर्शक सोचते होंगे मैं उनसे कह रही हूँ—
या उनसे कहने लगूँ । और देखो जब अभिनेत्रियाँ नृत्य करती हुईं देह

की मोचों, लोचों और भाव भगियों द्वारा अन्तर्निहित आकांक्षाओं को मुक्तता के साथ व्यक्त करती हैं, तब प्रत्येक दर्शक अपने को ही सुन्दरियों के उस प्रयास का लक्ष्य समझने लगता है। यही अभिनेत्रियों का लक्ष्य भेद भी है (हँसती हैं) दर्शक बोध और अबोध की भंवर में, अभिनेत्रियाँ निश्चलता के हिमालय पर। हिमालय से ध्वनि उठती है प्राणनाथ ! और वसन्त के सौरभ !! की, जैसे हिम में कोई सौरभ हो। अरे !! थकावट से विश्राम पाने के क्षणों में, मैं बहुत कह गई। पर मेरा कथन ठीक है न ?

वकुल—(दूसरी ओर देखते हुये) मैं चाहता हूँ, रंगमञ्च से बाहर तुम मुझसे प्राणनाथ कह सको।

तन्वी—(चिढ़कर) अच्छा ! यह बात !! आज यह रङ्ग चढ़ रहा है !!! अभिनेत्री से प्रेम की आशा !!!! और वह अभिनेत्री भी शकराज की सधंगत !!!!! मरुभूमि में जल ढूँढ़ रहे हो वकुल ! मेरे कथन को तुम बहुत समझे !

वकुल—सो तो जानता हूँ। मेरी बात को किसी नाटक का घरू संस्करण ही समझ लेना। परन्तु मेरे मन के एक कोने में थोड़ी सी आशा भी है—कोई एक दिन ऐसा आयगा जब नाटक जीवन का एक सच्चा भाग भी बन जायगा। तन्वी, मञ्जुलिका, क्या तुम्हारे हृदय में प्रेम रञ्जमात्र भी नहीं है ?

तन्वी—रङ्गमञ्च पर तुमने यह बात कही होती तो मैं लाज संकोच के मारे सिकुड़ सी जाती। कनखियों देखती। उल्टी सांसें चलाती। बरोनियों में एकाध आंसू को भी उलझा देती। दर्शक सोचते मैं प्रेम की कसक के मारे मरी जा रही हूँ। परन्तु यह स्थान जंगल है, जंगल, नाटकशाला नहीं है और ये दूर बैठे भारवाहक दर्शक नहीं हैं जिनके रिझाने की मेरे मन में लालसा हो। श्रीमान् वकुल जी, तुम्हारी चेतना क्या कहीं घास चरने चली गई ! मेरे मन में प्रेम ! तुम्हारे हृदय के किसी कोने में आशा !!

वकुल—मैंने तुम्हारे हृदय की बात पूछी थी ।

तन्वी - भाई बाह ! गुप्तचर के मुँह से क्या ये शब्द शोभा देते हैं ? अभी तक काम तो कुछ कर नहीं पाया और प्रेम सयाटे मारने लगा ! त्रिपुरी की ओर पहले भी घूम चुके हैं और वहाँ के पास पड़ोम में नृत्य गान और नाट्य भी किये हैं । पर्याप्त समय व्यतीत किया परन्तु इतना ही जो जान सके कि शातकर्ण और कण्वराज शकों के विरुद्ध तैयारियाँ कर रहे हैं ! अब आया है तुरन्त कुछ काम करने का समय । इन्द्रसेन को मार लिया या अधिकार में कर लिया तो जान लो कि शकों की आधी से भी अधिक विजय हो गई । अभी इन बातों को मन में दूर रखो । जो काम सामने है केवल उसको सोचो । चलो । इन्द्रसेन के अनुसन्धान में ।

वकुल—मैं अब सचेत हो गया हूँ, तन्वी । क्षमा करना । परन्तु मैं यह कभी मानने को तैयार नहीं कि मानव के भीतर मानव हृदय नहीं हो सकता ।

तन्वी—इन्द्रसेन कभी मिला तो दिखलाऊँगी । तुमने उसका निरीक्षण नहीं किया । वह जान पड़ता है ऐसा पुरुष जिसका लक्ष्य भेद सहज प्रतीत नहीं होता । अपना शत्रु न होता तो मैं बिना किसी संशय के कहती—यह है एक ऐसा, जिसको नारी अपना कुछ भेंट कर सकती है ।

वकुल—गुप्तचर के मुँह से ये शब्द ।

तन्वी—(हंसकर) गुप्तचर, गुप्तचर ही को तो सावधान कर रहा है । अब चलो उसी दिशा में जहाँ इस समय इन्द्रसेन प्रवास में होगा । अपना कार्यक्षेत्र वही है ।

वकुल—सम्भव है ।

(वकुल भारवाहकों को लाटा लेता है । ये सब जिस ओर से आये थे उसी ओर प्रस्थान करते हैं ।)

तीसरा दृश्य

[स्थान—दुग्धकुप्य ग्राम । समय—दिन । एक बर्तुआकार बड़ी भील के किनारे गांव बसा हुआ है । गांव बड़ा है । भील के दो पार्श्वों पर ऊँची ऊँची पहाड़ियाँ हैं । तीसरी दिशा में मैदान ऊँचा होता चला गया है । चौथी ओर भील एक बड़े बांध से टेक दी गई है । ऊपर, बीच-बीच में शिव और विष्णु के कुछ मन्दिर हैं । सेना का शिविर गांव में अलग, कुछ दूरी पर है । एक छोटे से भवन पर ऊँचे लट्ठे के सिरे से हंस-मयूर के चित्रों की अरुण रंग वाली पताका लहरा रही है । हंस-मयूर के ऊपर एक चक्र अंकित है । उस भवन पर 'हंस-मयूर'-मन्दिर लिखा हुआ है । भवन के आगे प्रागण है । प्रागण के पार्श्वों में दोनों ओर के कक्षों में जाने के लिये द्वार हैं । इन द्वारों के सामने, ओट के लिये छोटी छोटी दीवारें हैं जो छेद वाली और कहीं कहीं से टूटी फूटी भी हैं । एक ओर से प्रागण में इन्द्रसेन और उसका एक साथी आते हैं । ऋतु हेमन्त ।]

साथी—आदर्श कुछ कठिनता के साथ जनता के गले उतरता है, परन्तु जो कोई उसको समझ लेता है उसमें दृढ़ता और निर्भीकता बहुत आ जाती है !

इन्द्रसेन—मंजुली और श्रीकण्ठ के अभिनय का प्रभाव कैसा हो रहा है ।

साथी—नाटक कथानक बहुत उत्तेजनापूर्ण है, जनता आपके वाट्समय और उन लोगों के नाटक से उदीप्त हो गई है । लड़ जाने के लिये व्याकुल है ।

इन्द्रसेन—(एक क्षण सोचकर) नाटक का मयूर वाला अङ्ग जनता के पुरुषार्थ को चपल कर रहा है और हंस वाला अङ्ग उस उत्तेजना के ओज को सुरक्षित, धनीभूत और दृढ़ नहीं किये हैं । मैं तो इस निष्कष पर पहुँचा हूँ । उदण्ता को निर्भीकता का नाम नहीं दिया

जा सकता है और न दुःशीलता को तथा आतङ्क को बीरता का। हंस और मयूर के गुणों का—विवेक और साहस का, समान समन्वय होना चाहिये।

साथी—वैसे, देव, उन दोनों का खेल है विनोदपूर्ण। उस विनोद के द्वारा जनता उत्साह के ओतप्रोत हो जा रही है। (आतुर सा होकर) परन्तु आपके बच्चों को उसका अधिक श्रेय है।

इन्द्रसेन—(मुस्कराकर) वह परिणाम विष्णु, के उस रूप को ग्रहण करने का है। भ्रम पूर्ण और शिथिल आदर्शों ने जनमत को अस्त-व्यस्त सा कर दिया है। निर्भ्रम विवेक ही शत्रु की दृढ़ता के साथ सामना करने की शक्ति को संचालित कर सकता है। यह शक्ति प्रत्येक नरनारी प्रकृति में निहित है, कभी कोई भ्रम इसको शिथिल कर देता है, कोई बिखेर देता है और कोई प्रचण्ड कर देता है। विष्णु की भावना द्वारा इसका व्यापक संज्ञक आवश्यक है। तभी शक्ति के भांडार का निर्माण होगा। मेरी कामना है कि जनता अपनी सोई हुई, खोई हुई, शक्ति को विष्णु की साधना द्वारा पुनः प्राप्त करे! मञ्जुली को भेज दो। हां—श्रीकण्ठ भी आ सकता है।

साथी—अभी भेजता हूं, देव।

(जाता है)

(इन्द्रसेन विचार-मग्न टहलने लगता है। एक ओर से तन्वी आती है। वह फूलों से केश सजाये हुये है। उसकी वेश-भूषा भी आकर्षक है। उसके पीछे पीछे वकुल आती है। वह अपनी वास्तविकता को श्रीकण्ठ नाम से छिपाये हुये है।)

इन्द्रसेन—श्रीकण्ठ, तुम अभिनय में अतिशयता न लाओ तो तुम्हारा अभिनय सुन्दर हो सकता है। तुम्हारा भावोन्मेष जनमन को उन्मत्त सा कर देता है, परन्तु उद्देश्य उसको संयत सजगता देने का है।

वकुल—देव, मैं कुछ तो करने में समर्थ हुआ। आगे आपके निर्देश के अनुरूप कार्य करूंगा।

(मञ्जुलिका के चेहरे पर सलज मुस्कान है।)

इन्द्रसेन—अच्छा तुम उधर जा बैठो, तब तक मैं मञ्जुली से बात करूँगा ।

(वकुल नीचे नीचे देखता हुआ जाता है, परन्तु वह द्वार के सामने छेद वाला भीत के पीछे खड़ा हो जाता है ।)

तन्वी—अब कुछ प्रसाद मुझको भी, देव ।

इन्द्रसेन—तुमने हंस-मयूर नाटक को इस प्रदेश में कई बार खेला है, पर विवेक और तेज के सामग्र्य की जो कहानी तुम्हारे नाटक का आधार है वह कुछ यों ही रही ।

तन्वी—यों ही रही देव ! आपसे कहा था कि कहानी बना दीजिये नाटक में उसको हम लोग परिणित कर लेंगे, पर आपने कुछ किया ही नहीं ।

इन्द्रसेन—मुझको अवकाश नहीं मिला ।

तन्वी—अच्छा देव, हमारा नृत्य-गान कैसा रहा ? यहां की जनता को कैसा रूचा होगा ?

(सङ्कोच के आवरण में लुभाने का अभिनय करती है ।)

इन्द्रसेन—तुम्हारा नृत्य और गायन जो उदयगिरि में देखा था वंसा ही अब भी कलापूर्ण है, परन्तु नाटक की घटना निरी कल्पना थी और कुछ अस्त-व्यस्त, इसलिये लोग नाचने गाने पर रीझकर और कहानी पर खीझकर चले गये । (हँसता है)

तन्वी—(अप्रतिहत) वास्तव में देव, नाटक का मूल भाव अभी हम लोगों की समझ में नहीं आया है, इसलिये हम उसको ठीक प्रकार से मूर्तिमन्त नहीं कर सके ।

इन्द्रसेन—भाव, मञ्जुलिका, संक्षेप में यह है । केवल नीति से, केवल शान्ति से, केवल दया और अहिंसा से संसार का काम नहीं चल सकता । बड़े गुण होते हुये भी केवल इनके प्रभाव में जन और जनपद के जनपद, कातर कायर और निकम्मे हो जाते हैं । आक्रमणकारी उनपर टूटे और वे नष्ट हुये । केवल नीति ऐसे शत्रु के विरोध में काम दे सकती

हैं जो केवल नीति का मानने वाला हो परन्तु शक सदृश बर्बर और निर्बल शत्रुओं के सम्मुख केवल नीति की शिक्षा सहायता नहीं कर सकती केवल नीति और अहिंसा का प्रतीक है हंस ।

तन्वी—और आपने बतलाया था—

इन्द्रसेन—कई बार सुनो । फिर ब्रननाता हूँ—केवल शूरता, हत्याओं और रक्तपात की अखण्ड लड़ी है, यह केवल पाशविक बल है, इसका प्रतीक है मयूर । संसार और जीवन, इन दोनों के समान मेले से ही, चल सकते हैं । तुम्हारे नाटक में इस भाव की पुष्टि के लिये घटना अच्छी नहीं बनाई गई ।

तन्वी—(भोलेपन के साथ) देव, सुनती हूँ शास्त्रों ने उन सब गुणों को दुर्गुण कहा है जिनका प्रतीक मयूर है । इसलिये कहानी ठीक नहीं बन पाती ।

इन्द्रसेन—मञ्जुलिके, तुम मुराष्ट की हो । सुन्दर प्यारा मुराष्ट बारम्बार शकों के परों के नीचे रुंद-रुंद जाता है । मुराष्ट केवल हंस के गुणों का पुजारी है । इस बात को ध्यान में रखो तो कहानी ठीक बन जायगी ।

तन्वी—देव, मालव क्यों रह गये ?

इन्द्रसेन—वहाँ एक और कापालिकों की केवल बर्बरता थी और दूसरी ओर प्रेम के उन्माद में चूर गर्दभिल्ल जो इस बात को भूल गया कि वह जनपदों का नायक है, शकों का शाहानुशाह नहीं है, केवल एक जन-नायक है । योधियों को देखो । उन्होंने मुल्तान के पास कहलूर में शकों की सम्मिलित शक्ति की धज्जियां उड़ा दीं । शक काश्मीर और कपिशा के उत्तर से एकत्र होकर फिर टूट पड़ने की योजना कर रहे हैं, परन्तु हम भी उनको परास्त करके रहेंगे । नलपुर, पद्मावती और मथुरा के जनपद हमारे अधिकार या प्रभाव में आ गये हैं । हम लोगों ने ऐसी योजना बनाई है कि उषवदात को त्रिपुरी के आस-पास ही कहीं युद्ध

करने के लिये विवश होना पड़े। उस थुद्ध में शक ऐसे परास्त होंगे कि मारतवर्ष भर में कहीं भी उनकी शक्ति शेष नहीं रहेगी।

तन्वी—एक शकनायक भूमक नाम का भी सुना गया है। वह बहुत प्रतापी है।

इन्द्रसेन—हां वह प्रचण्ड दुष्ट कहीं उत्तर की ओर था। जयमन्त्र-धारी योधियों ने उसको पराजित कर दिया, सुना घायल हो गया है, कदाचित्त मर गया होगा।

(तन्वी धबरा जाती है। परन्तु अपनी चिंता तथा उद्विग्नता को कठोर प्रयास से दबाती है। भाव को छिपाने के लिये सिर नीचा कर लेती है।)

इन्द्रसेन—मन्जुलिके, चुप कैसे हो गईं? क्या बात है?

तन्वी—(नीचा सिर किये हुये) देव,— देव,—मैं आज एक भ...ख भीख...मांगने आई थी।

इन्द्रसेन—मुझसे! क्या मांगने आई थीं, मन्जुलिके?

तन्वी—(सँभलती हुई) हां देव,—नहीं, कुछ नहीं देव।

इन्द्रसेन—तुम अधीर क्यों हो गईं।

तन्वी—(और भी सँभल कर) नहीं, कुछ नहीं। (सलज मुस्कान का प्रयास करती है)

इन्द्रसेन—तुम्हारी बात क्या भूमक से कुछ सम्बन्ध रखती है?

(आंख गड़ाकर देखता है।)

तन्वी—(हड़ स्वर में) नहीं तो देव।

इन्द्रसेन—फिर क्या बात है? कह डालो न।

तन्वी—नाटक और अभिनय—कला की ही बात करना चाहती हूं।

इन्द्रसेन—तुम्हारे मन में कोई और प्रसङ्ग है। भटका सा खा गई हो। छिपाओ मत। बोलो।

तन्वी—(फिर विचलित होकर) योधियों को जयमन्त्रधारी क्यों कहते हैं।

इन्द्रसेन—इसको सारा देश जानता है—योधियों को युद्ध में कभी किसी ने परास्त नहीं कर पाया, इसलिये वे जयमन्त्रधारी कहलाते हैं। परन्तु योधेय तुम्हारे इस प्रकार विचलित होने के कारण नहीं हो सकते। वास्तविक कारण अभी दूर है। है न मञ्जुलिके ? बोलो।

तन्वी—(पुनः स्थिर होने का प्रयास करती हुई) युद्ध में नायक घायल हो जाते हैं—मारे भी जाते हैं ! आप भी जयमन्त्रधारी होने के मार्ग पर हैं ! (सिर नीचा कर लेती है)

इन्द्रसेन—(हँसकर) अच्छा—आगे ?

तन्वी—(निस्तार का कोई भी मार्ग न पाकर) उदयगिरि से इस जनपद के विकट जङ्गलों को कूदती-फादती चली आई। नारी होकर वंसी भीख मांगना अशुभ है, परन्तु समर क्षेत्र के एक चित्र ने विवश करके उस याचना को कण्ठगत कर दिया और मैं विह्वल हो गई। अब संकोच ने गले को दबा दिया है। (नीचा सिर किये हुये मुस्कराती है)

इन्द्रसेन—देश और धर्म को हानि पहुँचाने वाले दान को छोड़कर जो कुछ मांगोगी यथा सामर्थ्य दूंगा। तुम नहीं जानती तुम्हारी कला से मैंने कितनी प्रेरणा पाई है। उसने मेरे जीवन को चमत्कार और विनोद का अङ्ग बना दिया है। मांगो सुन्वरी मैं दूंगा।

तन्वी—(संयत होकर परन्तु कम्पित स्वर में) जो कुछ मैं मांगूगी उससे देश को कोई हानि नहीं पहुँचेगी, क्यों कि आर्य, मेरा भी वही देश है जो आपका है। धर्म की गति मैं नहीं जानती। आप पण्डित और शूर—दोनों—हैं।

इन्द्रसेन—मञ्जुलिके, तुमको हँसते हुये ही देखने का मुझको अभ्यास है। इसलिये खिन्नता को त्याग कर, अपनी मञ्जुल मुस्कान में बात करो। आज से तुमको उस मधुरस्मित के कारण मञ्जुली कहा करूँगा।

(तन्वी संयत हो गई है। नीचा सिर थोड़ा सा ऊँचा करके मुस्कराती है। ग्रीवा अंशतः तिरछी करती है। उसके माथे पर एक रेखा

पड़ जाती है। खांसती है फिर निरुद्ध सांस झटके के साथ फेक कर एक क्षण रुक जाती है।)

तन्वी—साहस नहीं कर पा रही हूँ, देव। मुझको अनुमति दीजिये, जाऊँ फिर कभी कहूँगी।

(वह गमनोद्यत होता है। को इन्द्रसेन आदि आ जाता है।)

इन्द्रसेन—टाल नहीं सकेगी, मञ्जुली। दुर्बोध को सुबोध बनाने का यही क्षण है। कह नहीं सकता फिर कब इतना समय मिलेगा। प्रसंग को इस प्रकार अधूरा छोड़ कर नहीं जाने पाओगी।

तन्वी—(निश्चय के स्वर में) देव, मैं कुमारी हूँ। कभी किसी से प्रेम नहीं किया—(यकायक चुप हो जाती है)

(इन्द्रसेन व्यग्र सा होकर तन जाता है और फिर झुक जाता है।)

इन्द्रसेन—(मुस्कराता हुआ) कहो, मञ्जुली कहो, प्रस्तावना तो मनोहर है।

तन्वी—(गर्दन नीचे किये हुये) देव, आपके प्रेम की भीख मांगती हूँ। (वह हिल जाती है)

इन्द्रसेन—मञ्जुली, तुम भीख मांग रही हो या वरदान दे रही हो !

तन्वी—देव, अब मुझको जाने दीजिये।

इन्द्रसेन—देवी, मैंने जब उस रात उदयगिरि की गुहा में तुमको देखा था, तभी मेरे हृदय में मञ्जुलता समा गई थी। परन्तु मुझको मोह कभी नहीं हुआ। मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ यह बात मैं क्यों छिपाऊँ ? मैं तुम्हारे साथ विवाह करके समानपद दूँगा। मञ्जुली मस्तक ऊँचा करो। मुझको अपने सुन्दर नेत्रों और मधुर स्मितों को देखने दो। वे तुम्हारी निधि है और मेरी भी। (मञ्जुली नीचा सिर किये हुये ही मुस्कराता है) मञ्जुली, एक बात का आश्चर्य है। जब तक देश स्वतन्त्र नहीं हुआ हमारा अण्य विवाह की सीमा पर नहीं पहुँच सकेगा।

तन्वी—दान दे चुके हो देव, मैं और क्या कहूँ ?

इन्द्रसेन—(हँसकर, उमग के साथ) मञ्जुली, अप्सरे, दान दो प्रकार के होते हैं—एक सत्वर, दूसरा स्थगित । इस दान को क्या कहूँ ?

तन्वी—(हँसकर) अधः पर ! त्रिशंकु !!

इन्द्रसेन—(हंसते हुये) आओ मञ्जुली, आओ देवी । मेरी बाहें तुम्हारा आवाहन कर रही हैं ।

(तन्वी के मुख पर लाली दौड़ दौड़ जा रही है ।)

तन्वी—यह भी अधः पर अथवा स्थगित रहेगा, देव, क्योंकि यह प्रणय की सीमा के बाहर है, यद्यपि 'विवाह की सीमा के' भीतर ।

(जाने के लिये उद्यत होती है)

इन्द्रसेन—(हंसता हुआ संयत स्वर में) ठीक कहती हो मञ्जुली ठीक कहती हो । ऐसा ही होगा । विश्वास रखो । थोड़ा सा ठहरो ।

(तन्वी आंग्व उठा कर इन्द्रसेन को देखती है मानो उसका सम्पूर्ण चित्र अपनी पलकों के भीतर भर लेना चाहती हो । आँख नीची कर लेती है ।)

तन्वी—अब मैं निवास स्थान को जाऊँ ? एक निवेदन और है । यह देश और धर्म किसी के प्रतिकूल नहीं है ।

(मञ्जुली हँसती है । उसके मोती जैसे दाँत चमक जाते हैं ।)

इन्द्रसेन—(हँसकर) कहो मञ्जुली, प्रेम की साकार प्रतिमा संकोच मत मरो ।

तन्वी—आगे मैं जनता में नृत्यगान नहीं करूँगी । आपके मनो-रन्जन के लिये आपके ही सामने कर सकती हूँ, आपके ही निकट रह कर ।

इन्द्रसेन—(कुछ सोचकर) जनता कुछ अपवाद करेगी । (फिर दृढ़ता के साथ) परन्तु इसमें जनता का क्या ? यह तो मेरे निजी जीवन से सम्बन्ध रखने वाला प्रसङ्ग है । देखा जायगा । जैसा तुम चाहती हो वैसा ही होगा ।

(नमस्कार करके तन्वी बाहर के कक्ष में जाती है। इन्द्रसेन घर के दूसरे भीतर कक्ष में चला जाता है। वकुल पसीने में डूबा सा प्रांगण में आता है। उसका चेहरा पीला सा पड़ गया है।

वकुल—चलो श्रीकण्ठ, घर चलें। क्या कुछ अस्वस्थ हो।

वकुल—नहीं मन्जुल—जुलिका—ऐसा—ही कुछ...अच्छा, चलो। बांध के किसी वृक्ष के नीचे बैठेंगे। वहां खुली वायु मिलेगी।

(तन्वी उसकी व्यस्तता को देखकर भी मुस्कराती रहती है, परन्तु वकुल उम मुस्कराहट को नहीं देख पाता। दोनों भवन से बाहर जाते हैं।)

चौथा दृश्य

[स्थान—दुग्धकुप्य ग्राम के पास की पहाड़ी जङ्गल। समय सन्ध्या के पूर्व। तन्वी और वकुल आते हैं।]

तन्वी—यहां कितने मन्दिर और मूर्तियां हैं ?

तन्वी—इनको खंडित करने के लिये अभी शक और हूण नहीं आ पाये हैं।

तन्वी—(अनसुनी सी करके) अब स्वस्थ हो ? क्या हो गया था तुमको ?

वकुल—मैं स्वस्थ और संयत हूँ। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि मानव के हृदय में मानव होता है।

तन्वी—तुम भूलते हो। (व्यङ्ग के स्वर में) तुमने एक बार कहा था, मानव के भीतर मानव हृदय होता है।

वकुल—यही सही। आज मैंने अपने कानों जो कुछ सुना है क्या वह सबका सब अभिनय ही था ?

तन्वी—तुम क्या समझे ?

वकुल—यही मानव के हृदय के भीतर का मानव बोला।

तन्वी—और क्या पत्थर के हृदय के भीतर का पत्थर बालता ?

वकुल—(आँखों में आँसू आ जाते हैं) क्षमा करो देवी, अब कुछ नहीं कहूँगा ।

तन्वी—देखो वकुल, अनमने मत होओ मूर्खता मत करो । सोचो समझो हम लोग किस परिस्थिति में हैं । पिताजी के ग्राह्य होने का समाचार सुनकर मैं बिचलित हो गई । और किसी प्रकार से निर्वाह होता हुआ न देखकर मैंने प्रेम की बात कही । प्रकट हो जाय कि हम लोग उषवदात के गुप्तचर है तो एक क्षण में मार डाले जायेंगे । तुमको मेरे अभिनय पर प्रसन्न होना चाहिये न कि खिन्न ।

वकुल—(कुछ खिल कर) मुझको सान्त्वना मिली, परन्तु उस अभिनय की वो एक बातें समझ में नहीं आई, इसलिये पूछना चाहता हूँ ।

तन्वी—पूछो श्रीकण्ठ ।

वकुल—तुम्हारे चेहरे पर लाली क्यों दौड़ दौड़ जाती थी ?

तन्वी—तुम देख रहे थे क्या । अस्तु । चेहरे पर लाली दौड़ा ले आना बड़े सफल अभिनय का अङ्ग है । और पूछो ।

वकुल—अलिंगन क्यों नहीं दिया ? इससे तो इन्द्रसेन का विश्वास और भी पक्का हो जाता ।

तन्वी—अलिंगन क्यों नहीं दिया, फिर पूछते, प्रणय में एक पग और आगे क्यों नहीं बढ़ी ? तुम भी क्या मूर्ख हो ! इससे तो मैंने अपने छल की सचाई को और भी पुष्ट किया बुद्धि के ठेकेदार ।

वकुल—अच्छा, अच्छा । चलते समय इन्द्रसेन को बड़ी बड़ी आँखों क्यों देखा ?

तन्वी—क्योंकि वे महान हैं, जीवन में ऐसा पुरुष कभी नहीं देखा । मैं उनको प्राणपण से चाहती हूँ । बस ।

वकुल—(हँसकर और नीचे पड़े हुये घास के तिनके को उठा उठाकर तोड़ते हुये) नहीं मञ्जुलिका, मैं ऐसा नहीं समझता । वास्तव में वह सब अभिनय था, परन्तु न जाने क्यों उस बात चीत और स्थिति

के सम्पूर्ण चित्र की एक साथ कल्पना करते ही मन भ्रंश में पड़ जाता है और शंकायें खड़ी हो जाती हैं। यदि वास्तव में तुम प्रेम के जाल में फँस गई तो हमारा कार्य पूर्णतयः धूल में मिल जायगा। एक समाधान अवश्य मिलता है। तुम प्रेम करने में असमर्थ हो। भगवान न तुमको प्रेम करने के लिये उत्पन्न ही नहीं किया है। इसलिये भय नहीं लगता। अब शीघ्र ही अवसर पाकर इन्द्रसेन का वध, शस्त्र या विष द्वारा करके यहां से चल देना चाहिये। (तन्वी की भोंहें सिमट उठती हैं। वकुल यह भाव नहीं देख पाता)

तन्वी—(संयत होकर) जो कुछ करोगे सावधानी के साथ करेंगे मैंने इन्द्रसेन के साथ प्रणय इसीलिये किया है। स्मरण है मैं महाक्षत्रप के सामने कुछ प्रण करके चली थी। मैं ही उस प्रण को कृतकार्य करूँगी मैं जो कुछ कहूँ केवल उतनी ही सहायता करते रहना।

वकुल—मैं इन्द्रसेन को किसी प्रकार भी नहीं छोड़ूँगा।

तन्वी—चलो अब घर चलें।

वकुल—चलो। आगे की योजना पर वहीं सोच विचार करेंगे।

तन्वी—श्री कण्ठ, इन्द्रसेन सचमुच महान है। (प्रस्थान)

चौथा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—त्रिपुरी के निकट नर्मदा का कौटा । जङ्गल, पहाड़ और घने वृक्षों के बीच में समभूमि । उस समभूमि में इन्द्रसेन, रामचन्द्रनाग तथा आंध्रों और काण्डवों की सम्मिलित सेनाओं की छावनी अनेक निवेशों में । एक बड़े निवेश पर हम-मयूर की छोटी-छोटी पताकायें हैं । बड़े निवेश के एक भाग में रामचन्द्रनाग, दूसरे भाग में इन्द्रसेन और तीसरे में वकुल तथा तन्वी हैं । इस निवेश के सब भागों के द्वार वृत्ताकार में एक ही ओर हैं । छावनी में व्यवस्था है । निवेश के द्वारों पर पट नहीं पड़े हैं । समय संध्या के पूर्व । ऋतु ग्रीष्म ।]

(रामचन्द्रनाग और इन्द्रसेन निवेश के बाहर आते हैं । वकुल अपने द्वार की ओर में भीतर खड़ा है ।)

इन्द्रसेन—आर्य, पुरानी प्रथाओं और रूढ़ियों के भ्रम को सत्य का रूप दे देने से वे निर्मल नहीं पड़तीं प्रत्युत उनको सजीव बने रहने का हठ और हानि पहुँचाने का बल और अधिक प्राप्त हो जाता है । इस वन में बड़े-बड़े विषधर सर्प हैं । उनको मारे जाने का निषेध नहीं करना चाहिये था ।

रामचन्द्र—सर्प, रक्षा और आक्रमण का प्रतीक है। हमारे यहां उसकी पूजा रुढ़ हो गई है। अतएव निषेध कर दिया।

इन्द्रसेन—इसको खंडित करना पड़ेगा।

रामचन्द्र—देश में व्यवस्था स्थापित होने के उपरान्त। वंसे भी हमारी सेना में बौद्ध और जैन विचारों के कुछ लोग हैं। वे कट्टर शक विपक्षी हैं। उसका भी ध्यान रखना पड़ा।

इन्द्रसेन—शकों को पराजित करने के उपरान्त बहुत काम करना पड़ेगा। हिंसा की भ्रमपूर्ण धारणाओं का निवारण वृद्धता के साथ करना होगा। जनता का एक बड़ा अंश कपोतवृत्ति हो गया है, उसका उबारना प्रथम कर्तव्य होगा।

रामचन्द्र—ग्राम का पंचायती संगठन पहले, क्योंकि शकों ने गणतन्त्र की परम्पराओं का उन्मूलन कर डाला है।

(सुनन्दा का एक सैनिक के साथ प्रवेश। वह दीन क्षीण सी दिखती है, परन्तु आंखों में तेज है)

सैनिक—देव, ये लोग आपसे कुछ कहना चाहते हैं। नाम नहीं बतलाया इसलिये मैं साथ ले आया।

इन्द्रसेन—(सुनन्दा को निकट से देखकर) ऐं ! क्या मैं पहिचानने में भूल कर रहा हूँ ? सैनिक तुम अपने काम पर जाओ।

(सैनिक का प्रस्थान)

सुनन्दा—(क्षीण स्वर में) आर्य ने पहिचानने में भूल नहीं की।

इन्द्रसेन—देवी, मैं आपको देखकर खुशी हुआ। कष्ट में जान पड़ती हैं। देवी सुनन्दा, आप मेरी अतिथि हुईं।

सुनन्दा—अनुग्रहीत हुई देव।

इन्द्रसेन—साहस नहीं होना देवी, पर क्या मैं पूछ सकता हूँ राजन्य कहां हैं ?

सुनन्दा—(मुखे रूखे स्वर में) वे यहीं आ रहे थे देव । मार्ग में उनको एक सिंह ने—

इन्द्रसेन—ओह !!! देवी, मैं इस समाचार को सुनकर बहुत सन्तप्त हो रहा हूँ । कब हुई यह दुर्घटना ?

सुनन्दा—आज एक माँस हो गया है । शकों की सेना उमड़ी चली आ रही है । उससे किनारा काटने के लिये घोर जङ्गल में होकर चलना पड़ा । उनको हम लोगों के बीच में से सिंह उठा ले गया ।

इन्द्रसेन—शकों की सेना उमड़ी चली आ रही है ! हूँ । वे लोग जन धन का विनाश करने चने आ रहे होंगे ! हुँ । देवी, मेरे लिये क्या आज्ञा है ?

सुनन्दा—मेरे भाई कालकाचार्य को आप जानते होंगे ।

इन्द्रसेन—(साँस छोड़कर) जानता हूँ देवी । कौन नहीं जानता उनको ! (नीचा सिर करके) मेरे लिये आज्ञा देवी ?

सुनन्दा—(कांपते स्वर में) मुझको उनके पास भेज दीजिये । मेरे लिये वे व्यग्र होंगे ।

इन्द्रसेन—(सिर को थोड़ा ऊँचा करके) वे तो शकों की इसी उमड़ती हुई सेना के साथ होंगे ।

सुनन्दा—(दृढ़ स्वर में) नहीं हैं, आर्य । मुझको समाचार मिला है, वे कहीं मुराष्ट्र में हैं ।

इन्द्रसेन—देवी, इस युद्ध के समाप्त होते ही आज्ञा का पालन करूँगा । तब तक आप शिविर में विश्राम करें । और कोई आज्ञा ?

सुनन्दा—मैं उपकृत हुई आर्य । कहाँ जाऊँ ?

इन्द्रसेन—इस सामने वाले निवेश में देवी । वहाँ विश्राम की सब सामग्री मिल जायगी ।

(सुनन्दा अङ्गरक्षक के साथ निवेश में जाती है। अङ्गरक्षक उसको पहुँचाकर लौट आता है, और चला जाता है। इन्द्रसेन का भी प्रस्थान। एक दूसरे स्थान में वकुल और तन्वी धीरे धीरे बात करते हुये आते हैं। वकुल सैनिक वेश में, सशस्त्र है, तन्वी गर्मी के कारण कंचुकी नहीं पहने है। केवल साड़ी पहने है।

वकुल—अब समय आ गया है मन्जुली।

तन्वी—सो तो मैं भी देख रही हूँ।

वकुल—महाक्षत्रप की सेना आ रही है। या तो निशा में ही युद्ध होगा या प्रातः के पूर्व ही निद्रा का राज्य होने पर, कपड़े की भीत के नीचे सरक कर उस भाग में जाऊँगा और इन्द्रसेन तथा रामचन्द्र नाग का अन्त करूँगा। उनके मारे जाने का समाचार फैलते ही आर्य सेना हड़बड़ा जायगी और अपनी सेना की विजय होगी। मैं तुमको लेकर महाक्षत्रप की सेना में जा मिलूँगा। वन-पर्वत निकट ही लगे हैं। मैंने अपने पास एक विषहीन-सर्प छिपा रखला है। यदि विफल हुआ तो उसको छुटका दूँगा और चिल्ला उठूँगा कि साँप को पकड़ने के लिये घुस आया, क्योंकि सर्पों के मारने का प्रतिषेध है।

(वध की बात सुनते ही तन्वी की आंख की एक कोर कुछ संकुचित हो जाती है।)

तन्वी—यदि हमारी सेना आज या कल भी न आई तो आर्य सेना का नायकत्व कोई न कोई करेगा ही। पहले यह निश्चय करलो कि शक-सेना समीप आगई है तो किसी और अवसर के लिये इस योजना को टाल दो। मुझको विचार कर लेने दो, क्योंकि तुमने पहले कभी नहीं बतलाया। अभी अकस्मात कहा।

वकुल—मन में कुछ तो मेरे पहले से ही थी, पर इसी रात काम कर डालने के लिये मैं एक विशेष कारणवश उद्यत हुआ हूँ।

तन्वी—यह विशेष कारण क्या है श्रीकण्ठ ?

वकुल—यदि इनको मार-मूर कर हम यहां से नहीं भागते है तो कल हम दोनों मार डाले जायेंगे ।

तन्वी—(बिना किसी भय के) क्यों ?

वकुल—अभी अभी सुनन्दा यहां आई है । (उसका नाम सुनकर तन्वी चौंक पड़ती है) बिलकुल थकी मांदा और अस्त-व्यस्त अवस्था में । वह यहां अतिथि है । जब पूरी नींद लेकर प्रातःकाल उठेगी तब तक श्रीकण्ठ वकुल हो जायगा और मञ्जुलिका तन्वी, क्योंकि सुनन्दा के साथ मैंने कालकाचार्य के विद्यापीठ में पढ़ा है । आ गया समझ में देवी ?

तन्वी—समझ गई ।

वकुल—अब क्या कहती हो ?

तन्वी—(एक क्षण सोच कर) यह कुछ मत करो । तुम्हारी योजना में पागलपन अधिक है, विवेक कम । तुम इसी समय छावनी के बाहर चले जाओ । इस प्रकार बच जाओगे । मैं अकेली रहकर अपने ढङ्ग से कुछ करूँगी । तुम शक सेना में जा मिलो ।

वकुल—मेरा निश्चय अटल है । मैं आज उन दोनों को मारूँगा । (तन्वी कुछ सोचती है) मञ्जुली, तुम कितनी सुन्दर हो और आज मैं कितना मुग्ध हूँ, यह मैं ही जानता हूँ । मैं जानता हूँ कदाचित्त मैं इस प्रयत्न में मारा जाऊँ । परन्तु मार कर मरूँगा । मरने से पहले क्या मुझको अपने प्रेम का आशीर्वाद न दोगी मेरी मञ्जुली ? (तन्वी के हाँठ सट जाते हैं । कुछ नहीं बोलती है । आँधरा बढ़ता चला जाता है । नर्मदा के जल प्रपात का शब्द सुनाई पड़ता है ।)

तन्वी—आज तुमको क्या हो गया है । आपे से बाहर हुये जा रहे हो ! जियोगे और जीवन में बहुत कुछ पाओगे । अभी तुमने संसार का देखा ही क्या है ?

वकुल—परन्तु तुम उस आशीर्वाद को न दोगी ?

तन्वी—मैं तुम्हें स्नेह करती हूँ । इसलिए अनुरोध करती हूँ कि चुपचाप चले जाओ ।

वकुल—स्नेह और प्रेम में अन्तर है तन...वी मन्जुली। एक बार तुमको हृदय से लगा लेता और मर जाता, तो अन्तिम साध मिट जाती।

तन्वी—क्या बकते हो ? श्रीकण्ठ ! विवेक से काम लो। मैं तुम्हारा नियन्त्रण करूँगी।

वकुल—मैं इस नियन्त्रण का अर्थ जानता हूँ मन्जुली। बहुत दिनों से जानता हूँ।

तन्वी—क्या जानते हो, मुझको नहीं पूछना है। मैं केवल यह प्रार्थना करती हूँ कि शांत रहो और उस कार्य को मत करो।

वकुल—क्योंकि, क्योंकि—अस्तु। मुझको निश्चय हो गया है कि तुम जान बूझ कर इन्द्रसेन के मारे जाने में बाधा डाल रही हो। क्योंकि मैं तुमको प्यारा नहीं हूँ, वह तुम को प्यारा है। तुम बंशगवी और हंसमयूरी हो गई हो।

तन्वी—चुप, चुप वकुल। भीते कपड़े की है, पत्थर, ईंट चूने की नहीं। मैं सोती हूँ। तुमको जो अच्छा लगे करो। अब मैं कोई बाधा नहीं डालूँगी।

(तन्वी अपने निवेश में जा लेटती है। अघेरा बढ़ता जाता है। छावनी में पड़े वालों के अतिरिक्त धीरे धीरे सब निद्रावश होते हैं। निवेश के पास वाले भाग में इन्द्रमेन इत्यादि सो जाते हैं। उसी निवेश के एक छोटे से कक्ष में सुनन्दा है। उसको नींद नहीं आ रही है। तन्वी को सोया हुआ समझ कर वकुल उठता है और उसके पास जाता है।)

वकुल—(स्वगत) जगत की अनुपम सुन्दरी तन्वी, इस जन्म में तुम्हारा प्यार न पा सका ! अस्तु। (उसके अध खुले माथे के निकट अपने होठ ले जाता है) अब मैं अपना काम करूँ। (कनक के पास जाकर कान लगाता है फिर लौटता है) इसको जगा कर एक बार हृदय से लगा लूँ ! नहीं, उतना ही बहुत है। अच्छा एक बार और...

(अपने हाँठ उसके माथे के निकट ले जाता है, और जाता है । वह कनात के नीचे के भाग होकर सरकता है, जहाँ वह ढीला है । तन्वी तुरन्त बिछौने से उठती है । अपनी साड़ी का कछोटा कसती है । उसकी दोनों बाँहें उघर जाती हैं । वह बिलकुल चुपचाप वकुल के पीछे पीछे जाती है । कनात की ढील में होकर वह आधी से अधिक सरक जाती है और पेट के बल उकड़ूँ पड़ी रहती है । वकुल एक हाथ में साँप को पकड़े हुये है और दूसरे में नङ्गा खड्ग लिये देख रहा है कि इन्द्रसेन किस स्थान पर सो रहा है । इन्द्रसेन का पर्यंक कनात के उस भाग के पास ही है जहाँ होकर वह सरक आया था । परन्तु पहिचान न सकने के कारण आगे बढ़ जाता है और फिर लौट पड़ता है । निवेश में कुछ बस्तियों का मन्द प्रकाश । वकुल साँप को छुटका कर इन्द्रसेन के सिर पर भर पूर वार करता है । तन्वी उसी समय उछल कर उसके कंधे को पकड़ कर पीछे खींचती है । इन्द्रसेन का सिर तो बच जाता है, परन्तु वार कंधे पर खिच जाता है और वह आहत हो जाता है । उसके मुँह से ओह ! निकलता है । शब्द में सङ्कट को अवगत कर सुनन्दा दौड़ती है, रामचन्द्र नाग जाग उठता है और दण्डपाशिक दण्डदीप लिये हुये निवेश के भीतर घुस आते हैं । साँप को देख कर दण्डपाशिक अकचका जाते हैं, सुनन्दा वकुल को पहिचान कर चीत्कार करके बैठ जाती है । भागने की सुविधा समझ कर वकुल छलांग मार कर निकल जाने का प्रयत्न करता है, परन्तु तन्वी उस को एक हाथ से लिपट कर छेड़े रहती है और दूसरे से उसकी तलवार छीनने का प्रयत्न करती है । रामचन्द्र अपने सिरहाने से खड्ग खींच कर वकुल पर झपटता है । दण्डपाशिक दौड़ पड़ते हैं और वकुल को नङ्गी तलवारों के घेरे में कर लेते हैं । इन्द्रसेन अचेत नहीं है । निवेश में और भी दण्डदीप आ जाते हैं । वकुल अपना खड्ग फेंक देता है)

सुनन्दा—वकुल ! वकुल !! यह क्या !!!

रामचन्द्र—उषवदात का गुप्तचर वकुल !

सुनन्दा—उषवदात का गुप्तचर !!

इन्द्रसेन—(तकिये से टिककर) ओह ! यह श्रीकंठ वकुल है ! मञ्जुली तुम उसको छोड़ दो, अब वह नहीं भाग सकता । यहीं आकर बैठ जाओ । तुम हांफ रही हो, पसीने में भीग गई हो ? (तन्वी उसके पास जाकर चिन्ता के साथ घाव की परीक्षा करती है ।) घाव बहुत साधारण है देवी । अभी पट्टी बँधी जाती है । (एक सैनिक पट्टी लाता है ।)

तन्वी—(व्यग्र और टूटे स्वर में) देव, उसका खड्ग कहीं विषाक्त न हो । वैद्य से विष के प्रतिकार की औषधि मंगवाईये । शीघ्र देव, शीघ्र ।

वकुल—(फटे स्वर में) तन्वी ! जाति द्रोहिणी अभगिन !!

रामचन्द्र—तन्वी कौन ?

इन्द्रसेन—तन्वी ! कौन तन्वी ?

(इन्द्रसेन की आंख तन्वी के उस उभड़े हुये बाहु पर जाती है जहां खरोष्टी लिपि में लिखा है, महाक्षत्रप भूमक की पुत्री तन्वी । इन्द्रसेन खरोष्टी लिपि जानता है । पढ़ लेता है और पढ़ कर चुप हो जाता है ।)

वकुल—मैं बतलाता हूँ कौन तन्वी । शकों की घातक, नाचने और गाने वाला निर्मम शिला - तन्वी ।

(तन्वी और सुनन्दा एक दूसरे का एकाग्र क्षण निरीक्षण करती हैं)

वकुल—सुनन्दा और तन्वी !! तन्वी ने शकों का नाश करवाया और—

इन्द्रसेन—सावधान नीच ! आगे मुँह मत खोलना !!

रामचन्द्र—सावधान ! वकुल !! (खड्ग उबारता है)

इन्द्रसेन—आर्य, क्या करते हो ?

सुनन्दा—मैं इसके प्राणों की भिक्षा मांगती हूँ ।

(तन्वी सुनन्दा के पास जाकर बैठने के लिये मुड़ती है । इन्द्रसेन दूसरे बाहु के गुदने वाले लेख को भी पढ़ लेता है—‘आचार्यकालक की

शिष्या तन्ती ।' वैद्य आता है और औषधोपचार पट्टी इत्यादि के उपरान्त चला जाता है । उसी समय शकों की सेना के आने का शब्द होता है । दण्डदीप जलाये हुये हैं और घोड़ों पर सवार । तुरन्त युद्ध हो उठता है । आकस्मिक आक्रमण के कारण आर्य सेना पहले भागती है, फिर शत्रु सम्हलकर लड़ती है । इन्द्रसेन खड़ा हो जाता है)

इन्द्रसेन—वकुल को कठोर पहरे में रखो । ले जाओ । (वकुल को सैनिक बांध कर ले जाते हैं) नागदेव, संभालिये सेना को मैं आता हूँ ।

(कवच इत्यादि पहिन कर रामचंद्र नाग का प्रस्थान । मुनन्दा अपने डेरे में जाती है । इन्द्रसेन कवच पहिनने का प्रयास करता है)

तन्वी—देव, आप यह क्या कर रहे हैं ? शरीर में इतना रक्त निकल चुका है ! कन्धे में घाव है, आप लड़ने जा रहे हैं !! नहीं जा सकेंगे ।

(इन्द्रसेन पलंग पर बैठ जाता है)

इन्द्रसेन—राजकुमारी—

तन्वी—राजकुमारी कौन देव ?

इन्द्रसेन—राजकुमारी तन्वी और हम लोगों की मन्जुलका महा—क्षत्रप भूमक की पुत्री, आचार्य कालक की शिष्या । मैं खरोष्टी लिख-पढ़ सकता हूँ और संस्कृत तो सहज ही है ।

तन्वी—(मुग्धकाकर) इससे मेरे हठ को बाधा नहीं पहुँचती ।

इन्द्रसेन—(खड़ा होकर) राजकुमारी मन्जुली, मुझको जाने दो, हंसमयूर के प्रतिनिधि को हंसमयूर के ध्वज के नीचे जाने दो ! क्या तुम चाहती हो कि आर्य हार जाय ? आर्य संस्कृति का निधन हो जाय ? रणक्षेत्र में मेरे पहुँच जाने से आर्य सेना को वुगुना बल मिल जायगा और राजा रामचन्द्र को चौगुना उत्साह । हमारी सेना में कदाचित् कोई, यह झूठा समाचार फैला दे कि मेरा बध हो गया है, तो आर्य सेना

की उमंगें शिथिल पड़ जायंगी । आओ कवच पहिनने में सहायता करो देवी ।

(तन्वी कवच इत्यादि पहिनने में सहायता करती है । उसकी आँखों में आंसू आ जाते हैं)

इन्द्रसेन—आज एक भील मैं तुमसे मांगता हूँ ।

तन्वी—क्या है देव ?

इन्द्रसेन—युद्ध से मेरे लौटने तक सुनन्दा की रक्षा करोगी ?

तन्वी—बचन देती हूँ आर्य ।

(इन्द्रसेन बाहर जाता है । तुरंत 'हंस-मयूर की जय' का तुमुल नाट होता है । तन्वी सुनन्दा वाले डेरे में जाती है । घमासान युद्ध रात भर होता है । प्रातःकाल होने के समय पुरंदर कपालिका की सेना लिये हुये आ जाता है । शकों के पैर पहले ही उखड़ चुके थे, अब वे बुरी तरह घेरे जाकर मारे जाते हैं । बहुत कम शक बचते हैं । उषवदात घायल होकर गिरता है और वन्दी कर लिया जाता है । युद्ध स्थगित होता है । इन्द्रसेन, रामचन्द्र नाग, और पुरन्दर, 'हंस-मयूर की जय' मालवगण, आंध्रों, नाग और कायवों की जय कहते हुये बड़े तम्बू के सामने आते हैं । सुनन्दा तम्बू के भीतर थाल में धान, फूल सजाये खड़ी है । उसके पीछे तन्वी उछल उछल, भांक भांक कर देखती है । वह बहुत उदास है । इन्द्रसेन को और भी घायल देखकर वह करुणा से भर जाती है ।)

तन्वी—(सुनन्दा से) आये घायलों को खुली वायु में नहीं रहना चाहिये ।

सुनन्दा—और तो कोई घायल नहीं दिखता—नलपुर गणनायक कुछ और घाव खा गये हैं । (दौवागिक को संकेत से बुलाकर) वैद्य को लाओ । (थाल रख देती है)

(दौवारिक जाता है)

तन्वी—मैं भीतर चली जाऊंगी (भीतर चली जाती है, वे तीनों | सुनन्दा के समीप आते हैं । सुनन्दा पीछे हट जाती है)

पुनन्दर—देवी, हम लोगों ने आरती के दर्शन कर लिये, बस हो गया । चाहो तो इसको छिड़क दो वह शुभ है ।

रामचन्द्र नाग—देव इन्द्रसेन की आरती मैं उतारूंगा ।

तन्वी—(आइ में सुनन्दा से) आरती नहीं, औषधोपचार (उसी समय वैद्य आकर इन्द्रसेन का उपचार करता है ।)

इन्द्रसेन—मेरी आरती ! मैं तो देश का एक छोटा सा सेवक हूँ । आरती उतारी जाय तो हंस-मयूर की, आवर दिया जाय तो उस देवी को जिसने मेरे प्राण बचाये । पुरुषों की आरती नहीं उतारी जानी चाहिये ।

(हंस-मयूर पताका सामने लाई जाती है, उसकी आरती उतारी जाती है । तन्वी आ जाती है । तन्वी और सुनन्दा पताका के ऊपर धान छिंटकती हैं, और फूल बरसाती हैं—इन्द्रसेन पर तन्वी विशेषकर । इसके उपरान्त कुछ घायल शक नायक निर्वंश के सामने लाये जाते हैं । वे पहिचान में नहीं आते । उपवदात को पहिचान कर तन्वी सुनन्दा को संकेत करती है और इन्द्रसेन के पीछे खड़ी हो जाती है ।)

तन्वी—(सुनन्दा से) महाक्षत्रप उपवदात यह है ।

(इन्द्रसेन सुन लेता है ।)

इन्द्रसेन—उपवदात, आप पहिचान लिये गये हैं । अपने घोर पापों और अपराधों का क्या उत्तर है आपके पास ?

उपवदात—कौन कहता है मैं उपवदात हूँ ? मैं उपवदात नहीं हूँ ।

तन्वी—(सामने आकर) मैं कहती हूँ तुम उषवदात हो । मैं कहती हूँ ।

उषवदात—कौन, तन्वी ! अभागिन राजकुमारी, क्या वैष्णव हो गई है ?

तन्वी—कुछ भी हो गई, परन्तु मैंने पाप नहीं किये ।

(पीछे हट जाती है)

पुरन्दर—तुरन्त इन शकों के टुकड़े कर के कुत्तों को डाल दो । ओह उषवदात यह है !

रामचन्द्र—हाँ । अवश्य ।

इन्द्रसेन—नहीं, नायको ! हम हंस-मयूर ध्वज को वंदियों के रक्त से कलुषित नहीं कर सकते । आर्य-धर्म के प्रतिकूल है । हमारी संस्कृति नतोन्मुख हो जायगी ।

पुरन्दर—तब इनको उज्जैन ले चलकर आजन्म कारावास दिया जाय ।

इन्द्रसेन—यह भी नहीं होगा आचार्य । उज्जैन में जो क्रूर कर्म इन लोगों ने किये हैं उसने उज्जैन निवासी बहुत क्रुद्ध हैं । वे इनको हमारे हाथ से छीन कर मार डालेंगे । औषधोपचार करने के बाद इनको विदिशा में बन्द रखा जाय ।

उषवदात—ओह ! तन्वी तन्वी, भूमक का नाम लजाने वाली शक कन्या ! शक ब्रोहिणी !!

तन्वी—(फिर सामने आकर) हाँ शक कन्या । और अब आर्य नारी ।

उषवदात—अभागिन !

इन्द्रसेन—ले जाओ इन लोगों को ।

(मरहम-पट्टी के लिये वे लोग हटा दिये जाते हैं । तन्वी अपने निवेश में चली जाती है । फिर सबका प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[स्थान—भृगुघाट के निकट का जङ्गल । इन्द्रसेन का प्रवेश । वह पट्टियाँ बाँधे है । पीछे से तन्वी आती है, उसके हाथ में पुष्पमाला है]

तन्वी—देव, इसको गले में पहिनाने दीजिये । (तन्वी की आँखों में आँसू आ जाते हैं । वह माला पहिनाती है)

इन्द्रसेन—मन्जुली, बहुत उदास हो । चिन्तित मत होओ । मैं स्वस्थ हो जाऊँगा । (तन्वी बिलख बिलख कर रोती है) क्या बात है मन्जुली ?

तन्वी—(कुछ संयत होकर) देव, मैं अब स्वाधीन नहीं हूँ ।

इन्द्रसेन—तुम स्वाधीन हो देवी । जहाँ चाहो वहाँ अत्यन्त आदर के साथ भेजी जा सकती हो । आर्य जनपद तुम्हारे अनुग्रह को कभी नहीं भूलेंगे ।

(तन्वी तिनक जाती है और आँसू पोंछती है)

तन्वी—(रुखे स्वर में) आर्य आप बहुत निष्ठुर और कठोर हैं । विन्ध्याचल सदृश निर्भय ।

इन्द्रसेन—(मुस्कराकर) मैं समझा नहीं ।

तन्वी—(यकायक हँसकर फिर तुरन्त गम्भीर होकर) आर्य सोचते होंगे मैं केवल एक शक नर्तकी और और गायिका हूँ ।

इन्द्रसेन—अपना और मेरा अपमान मत करो मन्जुली । मुझको बतलाओ तुम खिन्न क्यों हो ?

तन्वी—शकों के नाश पर मैं फूल चढ़ा रही हूँ देव, और क्या कहूँ ?

इन्द्रसेन—हूँ । तुम उस नाश को बचा सकती थी, देवी । किसी आर्य का विवेक तुम्हें बोधी ठहराने का साहस न करता ।

तन्वी—अर्थात् मैं अपना सर्वनाश कर लेती, क्यों निष्ठुर आर्य ?

इन्द्रसेन—(हँसकर) आग्रो मन्जुली, तुम्हारे स्पर्श से मेरे घाव स्वस्थ हो जायेंगे। (तन्वी इन्द्रसेन के कन्धे पर सिर टेक देती है) बस केवल इतना स्पर्श ?

तन्वी—(मुस्कराकर) दान दो प्रकार के होते हैं ! एक सत्वर ! दूसरा स्थगित !! कुछ और बतलाऊँ ?

(इन्द्रसेन खिलखिला कर हँस पड़ता है। तन्वी का हाथ पकड़ लेता है)

इन्द्रसेन—अनङ्ग मोहिनी मन्जुली, मैं यदि वासना लिप्त होता तो कवियों की उपमाओं की तुम्हारे ऊपर वर्षा कर डालता।

तन्वी—जानते भी हैं कवियों की कुछ उपमार्ये कि यों ही बात बना रहे हैं देव ?

इन्द्रसेन—मन्जुली, उस दिन मैं तुमसे हार गया था, आज जीत गया। आज हम लोग यहां से उज्जैन की ओर चल देंगे—

तन्वी—मैं उज्जैन नहीं जाऊँगी देव।

इन्द्रसेन—(सोचकर) अच्छा। त्रिपुरी यहां पास ही है। यहां के अधिकारी मेरे घनिष्ठ मित्र हैं। तुमको यहीं छोड़ जाऊँगा। व्यवस्था स्थापित करने के उपरान्त ही लौटूंगा, और भृगुघाट पर लड़े होकर नर्मदा से तुम्हारे द्वारा, अपने विवाहित जीवन के लिये आशीर्वाद मागूँगा।

तन्वी—(हँसकर) देव, मेरे द्वारा !

इन्द्रसेन—और नहीं तो किस के द्वारा ?

तन्वी—सुनन्दा को आप साथ ले जायेंगे ?

इन्द्रसेन—हां देवी। उनको कालकाचार्य के पास भेजना है।

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—उज्जैन । समय दिन । विजयी आर्य सेनायें बाजां के साथ हंस-मयूर पताकाओं को आगे लिये व्यवस्था के साथ पंक्तियाँ बाँधे हुये नगर की सड़कों पर प्रवेश करती है । बालक, स्त्रियाँ और पुरुष फूलों और धान की वर्षा से सैनिकों और मार्ग को भर देते हैं । सवाद्य नृत्य और गान में संलग्न नर नारियाँ सैनिकों के स्वागत में आते चले जाते हैं । 'हंस-मयूर की जय, मालवगण की जय, महासेनापति इन्द्रसेन की जय, सात वाहन शतकर्णि की जय, इत्यादि के नाद हो रहे हैं । दुःदुभी बजाने वाला उसी भीड़ भाड़ में आ जाता है । वह घोष करता जाता है ।]

'कल महाकाल के पुण्यक्षेत्र में संध्या के पूर्व महासभा होगी । महत्वपूर्ण विषयों का निर्णय होगा ।'

गीत

सुमन झिलमिल रश्मियों से झिल गया,
मुदित हो परिमल कमल में हिल गया,
गगन में आभा पसर कर रम गई,
सत्य, शिव, सुन्दर हमें फिर मिल गया ।

चौथा दृश्य

[स्थान—उज्जैन महाकाल मन्दिर के सामने के मैदान में एक बड़े सजीले वितान और चंद्रकों के नीचे सभामण्डप । चारों ओर कदली खंभ और घट । चौकियों पर सामने इन्द्रसेन, रामचन्द्र नाग तथा पुरन्दर । दायें बायें भिन्न भिन्न गणों तथा जनपदों के नायक और सेनापति । उसके बीच बीच में श्राद्ध इत्यादि प्रदेश के प्रतिनिधि बैठे हैं । समय—सन्ध्या के पूर्व । उज्जैन तथा आस पास के नरनारी सभा मण्डप में । बहुत कोलाहल हो रहा है । चाट और

आसन प्रज्ञापक नम्रतापूर्वक प्रबन्ध कर रहे हैं। इन्द्रसेन बोलने को खड़ा होता है। वह जनता को नमस्कार करता है। 'हंस-मयूर की जय' की तुमुल ध्वनि होती है और फिर सब लोग बिलकुल शांत हो जाते हैं]

इन्द्रसेन—सभा का प्रधान नियुक्त किये जाने के लिये मैं आप सब का कृतज्ञ हूँ। देवियों और बन्धुओं, तेरह वर्ष पहले की खोई हुई अपनी स्वतन्त्रता पाकर आज हम फिर अपने गणतन्त्र की स्थापना के लिये एकत्र हुये हैं। जनता की भूमि जनता को लौटाई है, क्योंकि जनता ही उसकी स्वामी है, राजा उसका स्वामी नहीं। अपने अपने वर्ग में रहकर लोग अपना काम सुख पूर्वक करे। सबको अपने अपने धर्म का अनुसरण करने की स्वाधीनता होगी, केवल यज्ञों में पशुओं का बलिदान न होगा जनमार्ग सुरक्षित रखे जावेंगे जिससे कृषि और उद्योगों की उपज दूर-दूर तक आ जा सके। किसी से भी बलात काम, धन या अन्न नहीं लिया जावेगा। ग्राम समितियों, शिल्पियों के संघ और श्रेणियां फिर से संगठित हों। नीति और शौर्य के समन्वय से जीवन और मरण को सुन्दर बनाया जाय। (बैठता है)

ग्रान्ध्र प्रतिनिधि—ग्रान्ध्र-राजा सात वाहन शतकर्ण अश्वमेध यज्ञ करना चाहते हैं। उनको किसी से कुछ नहीं चाहिये। अटक भीर पड़ने पर वे केवल अपना नायकत्व में उत्तर के गरों और जनपदों को चाहते हैं, और नासिक की कन्दरा में जहाँ शकों का अहंकारमय तिला-लेख है वहाँ शकों के समाप्त करने के सम्बन्ध में लेख उत्कीर्ण करना चाहते हैं। अनुमति के लिये प्रार्थना है। (बैठता है)

इन्द्रसेन—मेरी समझ में यह प्रार्थना अनुचित नहीं है। शतकर्ण ने नासिक ही के समीप मुराष्ट्र के शकों का उच्छेदन किया, और उनकी सहायता ने हमने शक पुलिन्दों को मार भगाया इसलिये उनको लेख उत्कीर्ण कराने का नैसर्गिक अधिकार है। अश्वमेध के लिये भी हम लोगों

को अनुमति देनी चाहिये । मालवगण और घोधेय उनके सहयोगी हैं । उत्तमभद्रों ने भी हमारा सहयोग स्वीकार किया है और वे शातकर्ण की महानता को भी मानेंगे इसलिये भी कि कुछ जनपदों के राजा एकतन्त्री बन गये हैं या बनना चाहते हैं जिससे देश फिर संकट में पड़ सकता है, शातकर्ण को अश्वमेध करने की अनुमति दी जानी चाहिये ।

रामचन्द्र—इस सभा में समस्त प्रदेशों के गणपति, गणपक, जनप्रमुख, विद्वान, ब्राह्मण, श्रमण श्रावक उपस्थित हैं । इनके छन्दों का संग्रह कर लिया जाय । यदि बहुमत इस पक्ष में हो तो अनुमति दे दी जाय ।

आन्ध्र प्रतिनिधि—उचित है राजन्य ।

(आज्ञा प्रज्ञापक, आसन प्रज्ञापक और सभा नियोजक दो भिन्न रङ्गों की शलाकाओं को उपस्थित जनता में बांटते हैं । प्रत्येक छन्ददाता के हाथ में उन भिन्न रङ्गों की दो दो शलाकायें दे दी जाती हैं)

इन्द्रसेन—जो लोग आन्ध्र-स्वराट सातवाहन, शातकर्ण को अश्वमेध यज्ञ करने की अनुमति देने के पक्ष में हों, वे लाल रंग की शलाकायें शलाका-संग्रहक को दे दें । जो इस प्रस्ताव के विरुद्ध हों वे हरे रंग की शलाकायें दे दें । इन शलाकाओं की गणना के उपरान्त बहुमत और क्षीण मत का निर्णय किया जायगा । आप अपना छन्द देने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं इस बात को दुहराने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं ।

(उपस्थित जनता शलाका संग्रहक को अपनी अपनी एक एक शलाका दे देती है । संग्रह के उपरान्त शलाकाओं की गणना सभा नियोजक और सभा प्रधान करते हैं । फिर बहुमत का परिणाम सुनाया जाता है)

इन्द्रसेन—सातवाहन शातकर्ण को अश्वमेध यज्ञ करने की अनुमति बहुमत द्वारा दी जाती है। (तीन बार कहता है)

जनता—स्वीकार है।

पुरन्दर—आज इस आनन्द की घड़ी को लाने का श्रेय किसको है ? किसने इन दीर्घ वर्षों, चिन्तन और परिश्रम करके, देश को मुक्ति के दर्शन कराये ? किसने उन भयावनी, घोर और प्रतिकूल परिस्थितियों में से फिर से सतयुग को स्थापित किया ? किसने बिखरे हुये और ध्वस्त प्रायः आर्य जनपदों को संगठित किया ?

सब के सब—(उत्साह के साथ) आर्य इन्द्रसेन ने।

पुरन्दर—आप ठीक कहते हैं। भगवान का कथन है—जब जब धर्म की ग्लानि होती है, मैं जनता के बीच में उभरता हूँ और जन सुख की स्थापना करता हूँ। मुझ समान कापालिक को भी जिन्होंने शङ्कर का सौम्य रूप दिखलाया, उन आर्य इन्द्रसेन को आज से 'कृत' कहना चाहिये कृत अर्थात् सतयुगी।

सब—आर्य इन्द्रसेन 'कृत' की जय हो। मालवानां जयः।

पुरन्दर—गर्दभिल्ल को सिंह ने खा लिया और मुनन्दा अपने भाई कालकाचार्य के पास सुराष्ट्र में पहुँच गई है। आबिका है और सस्वती नाम से विख्यात है।

रामचन्द्र—हूँ। फिर ?

पुरन्दर—गर्दभिल्ल के पुत्र को हम उज्जैन का राजा नहीं बनाना चाहते। इसलिये मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आर्य इन्द्रसेन कृत को उज्जैन और मालव जनपदों का राजा नियुक्त कर दिया जाय।

रामचन्द्र—उचित है। आर्य इन्द्रसेन, गर्यों की स्वतन्त्रता की रक्षा प्रबलता के साथ करेंगे।

इन्द्रसेन—(खड़े होकर हाथ जोड़कर) आप लोग कृपा पूर्वक मुझको जो श्रद्धा प्रदान कर रहे हैं उसके बोझ से मैं दबा जा रहा हूँ।

परन्तु मालवगण सावधान, राजा बनाने की प्रथा को स्थायी कर देना बहुत हानिकारक है। राजा अपनी सन्तान को राज्य देता है। सन्तान तड़क-भड़क और बनावट की भूमि में उपजने और बढ़ने के कारण अयोग्य और परजीवी हो जाती है। जनता रूढ़ियों को नहीं तोड़ पाती है और घिपव में बार बार पड़ जाती है। इसलिये मुझको राजा बना कर आप पापी होंगे और सङ्ग में मुझको भी पाप का भागी बनायेंगे। मैं तो नीति और शौर्य के समन्वय और प्रचार में अपना बचा हुआ जीवन बिताऊंगा। वही मेरा राज्य है और हंस-मयूर मेरी पताका। परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि उस साधना के योग से आप अर्हन्स उन्नति करें, आपकी स्वाधीनता अटल और अमिट रहे और आप संसार भर को अपने विकास का चमत्कार दें। (नत मस्तक बैठ जाता है)

सब—आर्य कृत की जय।

इन्द्रसेन—न, ऐसा मत कहिये। मालवों की जय उचित घोष है और उन जय मन्त्रधारी योधियों की जिन्होंने विदेशियों के उड़कर आने वाले पहाड़ों को उत्तर में ही अपने बज्रों से चूर चूर कर दिया, उन मालवों की जिनकी शक्ति और संस्कृति ने शकों की प्रचण्ड आंधी को केवल तेरह वर्ष के राज्य काल के उपरांत ही सदा के लिये मुला दिया! सातवाहन शातकर्ण के उन आन्ध्रों की जिन्होंने मालवों के साथ मिलकर देश को अभय की जलांजलि दी।

पुरन्दर—मेरा एक प्रस्ताव तो माना ही जाना चाहिये।

सब—कहिये आचार्य।

पुरन्दर—मालवगण की फिर से स्थापना होने के उपलक्ष में कृत नाम से संवत् का प्रवर्तन होना चाहिये, और मालवगण का जो कोई भी प्रमुख हुआ करे वह शकों के विध्वंस की स्मृति में शकारि कहलावे।

सब—अवश्य हो, अवश्य हो। आर्य इसको नहीं रोक सकते। यह हमारे ही विक्रम का रूप है।

इन्द्रसेन—नहीं रोकता हूँ मालवगण । तेरह वर्ष की असंख्य यातनाओं के नन्तर हमारी संस्कृति का सतयुग फिर आया है । उसका सम्बत चलाइये । और मुद्राओं पर लिखवाइये—मालवानाम जयः ।

सब—स्वस्ति । स्वस्ति ।

रामचन्द्र—बन्दी शकों और उस वकुल का क्या किया जाय जिसने आर्य इन्द्रसेन के बध करने का प्रयत्न किया था ।

पुरन्दर—कृत ने उन लोगों के बध का निषेध कर दिया है । मेरी समझ में उनको आजन्म कारावास दिया जाय ।

इन्द्रसेन—आचार्य, यह भी नहीं होना चाहिये । वकुल धारा का है । इसको उत्तमभद्रों के हाथ सोंप देना चाहिये । वे इसकी देख रेख करते रहेंगे । कदाचित् यह अपने जीवन को अब भी सुधार ले । और शकों को उस ओर पहुँचा देना चाहिये ।

पुरन्दर—ये फिर उपद्रव करने के लिये भारत भूमि पर आधेंगे ।

इन्द्रसेन—हमको अपने भगवान और अपने बाहुबल का भरोसा करना चाहिये । मुझको विश्वास है कि ये भारत का अब नाम नहीं लेंगे ।

पांचवां दृश्य

[नर्मदा का तीर । भृगु घाट के निकट । समय—संध्या के पहले । तन्वी का साधारण वेश में प्रवेश]

तन्वी -- (स्वगत) नर्मदा के अनन्त जल प्रपात, स्फटिक के चमत्कार को संगीत का प्राण देने वाले गन्धर्व, भाप के रूप में तुम्हारी अप्सरा सदा तुम्हारे अखण्ड संग में रहती है । तुम सरस और सजीव हो । बोलो, मैं गुप्तचर से नारी, शक से आर्य और नर्तकी से प्रेमोन्मादिनी क्यों हुई ? तुम नहीं बतलाओगे ? क्या तुम उनसे भी अधिक निष्ठुर हो ? नहीं, मैं अन्याय कर रही हूँ । रवि रश्मियों से तुम इन्द्रधनुषों को पकड़ पकड़ लेते

हो तुम निर्मम नहीं हो सकते । और वे ? क्या कह सकती हैं । सुनती हैं उन्होंने मालवों का राजा होने से नाहीं करदी है । तब मुझ सदृश क्षुद्र नारी को मन से हटा डालने में उनको कितने क्षण लगेंगे ?

(इन्द्रसेन चुपचाप पीछे से आकर हाथ से उसकी आंखें मींच देता है)

इन्द्रसेन—पाषाणों को भी पानी कर देने वाली अप्सरा, प्रपात के संगीत और इन्द्रधनुष को अपना समग्र ध्यान दे देने वाली तन्मयता—

तन्वी—(हर्ष प्रमत्त होकर) छोड़िये, छोड़िये आप बड़े छली हैं । मुझको दर्शन लेने दीजिये ।

इन्द्रसेन - (उसके सामने आकर हँसता हुआ) स्थगित दान के देने और लेने का समय आ गया, परन्तु तुम तो निर्जीव प्रपात की ही सजीवता देने में लगी हुई हो ।

(तन्वी इन्द्रसेन के कन्वे से जा टिकती है आंखों में हर्ष के आंसू आ जाते हैं)

तन्वी—(अलग होकर) प्राणनाथ, कहां थे इतने दिनों ? क्यों कोई समाचार नहीं दिया ?

इन्द्रसेन—क्योंकि वैसे इस सुन्दर पवित्र स्थान पर अश्व को ठोकें खिलाता और खाता, पेड़ों और पत्तों से पता पूछता, कैसे आता ?

तन्वी—मैं त्रिपुरी में कह आई थी ।

इन्द्रसेन—अब चलो मैं घोड़े पर बिठा ले चलूंगा ।

तन्वी—एक बार अप्सरा का नृत्य देखोगे, देव ? (मुस्कराकर) फिर नहीं दिखलाऊंगी ।

इन्द्रसेन—उसके लिये ठहर सकता हूँ । अभी प्रकाश है । आगे नृत्य क्यों नहीं देख सकूंगा ?

तन्वी—क्योंकि मैं मञ्जुली से कृता बनने जा रही हूँ—

इन्द्रसेन—(हँसकर) तुमने मेरा उपनाम सुन लिया !

तन्वी—सुन लिया था (बाहुओं पर दृष्टि डालकर) खेद है इन गुदनों को न छील सकूंगी ।

इन्द्रसेन—खेद की कोई बात नहीं । वे मेरे गौरव हैं । गौरव के भी सौष्ठव । मञ्जुली की मञ्जुलता के संस्मरण, तन्वी की सूक्ष्म मोहकता के प्रतीक और मेरी—

तन्वी—(हँसकर) और दृढ़ता के चिन्ह । कह डालिये देव, रुक क्यों गये ?

इन्द्रसेन—(मुस्कराकर) आज मेरी पराजय की पराजय है ।

तन्वी—अथवा मेरी जय की विजय देव ? (नीचा सिर कर लेती है)

इन्द्रसेन—अब अप्सरा क्या बातों में उलझाने जा रही है ?

तन्वी—(सिर उठाकर) नहीं नाथ । यह नर्मदा, यह प्रपात, यह सीकर—पुञ्ज एक वरदान मांगने के लिये मुझको विवश कर रहे हैं ।

इन्द्रसेन—वरदान मांगने के लिये या वरदान देने के लिये ?

तन्वी—उपहास मत करो देव । मुझको इस परम सुन्दर स्थान पर आज जो कुछ मिला है उसके उपलक्ष में दो मूर्तियाँ बनवा कर खड़ी करना चाहता हूँ । अनुमति देंगे देव ?

इन्द्रसेन—दोनों हाथों । (हँसता है)

तन्वी—अब मैं गाऊँगी ।

इन्द्रसेन—और मैं शुकदेव सा बनकर बंठता हूँ । (बैठ जाता है)

(तन्वी का गान के साथ नृत्य)

(राग बागेश्वरी)

वीणा ने झंकार सुनाई—

लाज सकुच तज सरिता आई ।

फेन फुहार, कुहासा, ध्वनि, ले,

चल चल री, जल निधि से मिलले,

पवन भकोर संदेशा लाई—

वीणा ने झंकार जगाई ।

(गायन के बीच में इन्द्रसेन थोड़े समय तक आंखें मूंदे रहता है, फिर खोल लेता है और मुस्कराता रहता है)

तन्वी—(गायन की समाप्ति पर) आपने आंखें क्यों खोल लीं देव ?

इन्द्रसेन—क्योंकि तुम हृदय में स्थित होते हुये भी आंखों में आबिराजी, क्योंकि मैं मुक्त हूँ, क्योंकि प्रकृति और पुरुष अपने देश की स्वाधीनता को अमर रखेंगे ।

दोनों—(गाते हुये) अमर हो स्वाधीनता इस देश की ।

(यवनिका पतन)

मयूर-प्रकाशन; भाँसी

:: :: श्री वृन्दावनलाल वर्मा-साहित्य के एकमात्र प्रकाशक :: ::

हमारे प्रकाशन

भाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ६)	तोषी ... १)
मृगनयनी .. ५)	मुमाहिबजू ... ११)
कचनार ... ४११)	लगन ... ११)
प्रेम की भेंट ... ११)	अमरबेल ... ५)
मोना ... ३)	टूटे काँटे ... ४१)
अचल मेरा कोई ३११)	सामाजिक नाटक
अहिन्थाबाई ... २१)	राखी की लाज ... ११)
ऐतिहासिक नाटक	खिलौने की खोज ... ११)
भाँसी की रानी ... २)	बांस की फांस ... १)
हंस-मयूर ... २१)	नीलकंठ ... ११)
पूर्व की ओर .. २१)	सगुन ... १११)
बीरबल ... ११)	पीले हाथ ... १११)
जहांदारशाह ... १११)	मंगलसूत्र ... १)
फूलों की बोली ... ११)	निस्तार ... १)
ललितविक्रम ... ११)	एकांकी—
कहानी—	काश्मीर का कांटा ... १)
शरणागत ... ११)	लो, भाई पंचो लो .. १११)
कलाकर का दड ... ११)	कनेर ... १)

—: अन्य लेखकों की कृतियां :—

कथा	काव्य	इतिहास
रुबी की बुनियां में ११११)	चले चलो १११)	अगस्त ब्यालील
नई कहानियां १११)	सरसी २)	महाप्रयाण १११)
नारी जीवन चक्र १११)	विश्व भारती १११)	राजाकार पतन २११)
सेखार्ये १११)	साहित्य और समाज १११)	प्राणदंड ५)

